

वर्ष-षष्ठम्
सितम्बर-2015

ISSN - 2231-1130

वीथिका

(वार्षिक सान्दर्भिक शोध पत्रिका)

— सम्पादक —

मञ्जुल त्रिवेदी

— सह-सम्पादक —

डॉ० रामराजन द्विवेदी
डॉ० सत्या मिश्रा

पं० रामशंकर त्रिवेदी मेमोरियल सोसायटी
लखनऊ द्वारा प्रकाशित

वीथिका

(वार्षिक सान्दर्भिक शोध पत्रिका)

- सम्पादकीय कार्यालय -

A-888, सेक्टर-1, आशियाना, लखनऊ

सम्पर्क : 9451346084, 9936466943, 9935330260

E-mail: veethikalko@gmail.com

- मुद्रक -

हिन्दुस्तान ऑफसेट

दालमण्डी, सआदतगंज, लखनऊ

- शोध पत्रों/आलेखों में दिए गए विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। तथ्यों की प्रामाणिकता एवं मौलिकता हेतु लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।
- सम्पादक मण्डल सहित समस्त पद पूर्णतः अवैतनिक तथा परिवर्तनीय हैं।
- समस्त न्यायिक परिवादों का क्षेत्र लखनऊ ही होगा।
- किसी भी लेख अथवा लेखांश को प्रकाशित करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य है।

& I j {kd &

MkK jfo fd' kkg f=onh ¼i hOMhO, I O½

& ekun I j {kdx.k &

Jh ân; ukjk; .k nhf{kr

(राष्ट्रीय चिन्तक, लेखक व सदस्य, वि०प०, उ०प्र०)

MkK jke ujs'k

(प्राचार्य, दयानन्द बछराँवा पी०जी० कालेज, बछराँवा, रायबरेली)

MkK eukjek frokjh

(पूर्व प्राचार्या, महिला डिग्री कालेज, लखनऊ)

& I Ei kindh; i jke' kñk=h I fefr &

i kO vke i dk' k i k. Ms

(पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, ल०वि०वि०)

i kO m"kk feJk]

(पूर्व अध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद)

i kO 'kSydnz ukFk dij

(पूर्व अध्यक्ष, प्रा०भा० इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, ल०वि०वि०)

i kO jkts'k feJk

(पूर्व अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, ल०वि०वि०)

i kO i ou vxoky

(हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, ल०वि०वि०)

i kO jkts'oj i ð kn feJ

(संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा)

MkK eukjek voLFkh

(पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी वि०, जे०एन०पी०जी० कालेज, लखनऊ)

Jh jke fd' kkg 'Hkn[ku Hkb; k*

(वरिष्ठ साहित्यकार, उन्नाव)

MkK 'kkfHkrk vxoky

(एस० प्र०, दयानन्द महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, कानपुर)

& I E i k n d &

मञ्जुल त्रिवेदी

& I g & I E i k n d &

MkND jkejktu f}onh

MkND I R; k feJk

& I E i k n d e. My &

MkND vUtwnRr

MkND vk; 'kk Okreh

MkND ekyfodk jatU

MkND olnuk I r

MkND I Ur idk'k frokjh

मयंक त्रिवेदी

vthr dekj fl g

MkND I rh'k dekj fl g

& fof/kd I ykgdkj &

vfuy dekj voLFkh

(अधिवक्ता, माननीय उ०न्या० इलाहाबाद, ल०ख०पी०)

vrgy dekj f=onh

(अधिवक्ता, माननीय उ०न्या० इलाहाबाद, ल०ख०पी०)

अनुक्रमणिका

क्र०सं०	पृ०सं०
1. वृहत्संहिता का अध्याय 'दृकार्गल' प्राचीन भारत में भूगर्भ जल की खोज का अनूठा दस्तावेज़ — डॉ० आयशा फ़ातमी	9—25
2. बौद्ध संघ की भिक्षुणियां एवं उनकी वेशभूषा — डॉ० वन्दना संत	26—33
3. महाभारत में चिकित्सा विज्ञान — पूर्णिमा सिंह राना	34—46
4. मार्कण्डेयपुराणे अनुलेपविद्या — बुद्धदेव घोषः	47—53
5. भारतेन्दु युगीन साहित्यिक पत्रकारिता और भारतबन्धु — अरुण कुमार सिंह	54—59
6. नई कविता और केदारनाथ सिंह — संदीप कुमार यादव	60—68
7. ग्रामीण रूपान्तरण की प्रक्रिया : एक समाजशास्त्रीय विवेचना — डॉ० सत्या मिश्रा	69—74
8. Women entrepreneurship in India at Cross-Roads — Dr. Sandhya Pandey / Prachita Pandey	75—80
9. Rural Development and Its Scope In India — Dr. Sarita Singh	81—93
10. "Problem and Constraints of Small Scale Industries in India" — Dr. Rahul K. Misra / Monika Mishra	94—98
11. Semester System in Higher Education : A Choice or Need? — Dr. Mamta Dogra	99—107

क्र०सं०	पृ०सं०
12. Strategy of Internship on Teacher Preparation — Priya Johari	108—115
13. Imaging India in Upamanyu Chatterjee Novel English August — Dr. Shivani Verma	116—123
14. "जे० कृष्णमूर्ति की शिक्षा नीति की प्रासंगिकता का अध्ययन" — आरती गौतम	124—137
15. अध्यापक शिक्षा : नियत, नीति और नियति — जितेन्द्र सिंह गोयल'	138—147
16. बीमारी एवं स्वास्थ्य : भोटिया जनजाति की पारम्परिक से आधुनिकता की स्वीकार्यता — ओमप्रकाश	148—153
17. उमैय्याकालीन सभयता एवं संस्कृति : एक दृष्टि — डॉ० रज़िया परवीन	154—159
18. 'गुरु' : अर्थ, अवधारणा एवं स्वरूप — धीरेन्द्र कुमार पाण्डेय'	160—164

सम्पादकीय

यद्यपि ध्रुवीकरण प्राकृतिक है, जीवन—मृत्यु, आशा—निराशा, उत्साह—अवसाद, पीड़ा—आनन्द, सफलता—असफलता, सुख—दुःख आदि के बीच ही जीवन की गति है। चुम्बक की तरह धरती भी उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों में बँटी हुई है। किन्तु विचारणीय है कि गरीबी और अमीरी भी क्या प्राकृतिक है? या फिर यह सांस्कृतिक विकास की खामियों का परिणाम है। यदि यह अन्तराल पहले से था तो मनुष्य का दायित्व क्या है? इस अन्तराल को बढ़ाते जाना या फिर घटाने की कोशिश करना। वैश्विक पटल पर जहाँ अमेरिका और यूरोपीय संघ हैं, वहीं अफ्रीका में अनाज और स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए तरसते मुल्क भी हैं। दरअसल इस असमानता का मूल कारण सिर्फ स्वयं को आगे ले जाने की प्रवृत्ति है। मानसिक अहमन्यता है? 'अहम् ब्रह्मास्मि' या 'अनहलक' एक ईश्वरीय सत्ता से हर व्यक्ति को जोड़ने की कोशिश है, किन्तु समस्या का मूल व्यक्ति द्वारा स्वयं को ही 'ब्रह्म' या 'खुदा' समझ लेना है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण भारत 'अहं ब्रह्मास्मि' बनाम 'अनहलक' के द्वन्द्व में उलझा हुआ है। यह द्वन्द्व न तो ईश्वरीय शक्तियों का है न ही धार्मिक, बल्कि राजनीतिक है।

इस राजनीतिक साजिश की शुरुआत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से होती है जिसका उद्देश्य वैश्विक स्तर पर वर्चस्व का निर्माण करना है। अमीरी और गरीबी (असमानता) को दो ध्रुवों की स्थिति तक पहुँचाने में विकसित देशों विशेषतः तथाकथित अमरीकी पूँजीवाद की बड़ी भूमिका है। दरअसल दूसरे विश्व युद्ध के बाद सन 1950 ई० से 1960 ई० के बीच औपनिवेशिक सत्ताओं के कमजोर पड़ने से दर्जनों मुल्क स्वतन्त्र हुए। इन नव—स्वतंत्र देशों पर अपना प्रभाव जमाने के लिए विकसित देशों में अंधी दौड़ शुरु हुई। चूंकि इस दरम्यान रूस का समाजवादी शिराजा ढह गया तो अमरीकी पूँजीवाद और यूरोपीय देशों के गठजोड़ ने स्वन्त्र देशों की 'संप्रभुता' काबिज करने का नया दांव खेला। इन देशों ने भूमण्डलीकरण और बाजारीकरण के जरिये नव—स्वतंत्र देशों की अर्थव्यवस्था को 'आई०एम०एफ०', 'विश्व बैंक' और 'डब्ल्यू०टी०ओ०' की सनद का मोहताज बना दिया। उत्पादन और उपभोग

के नये रूपकों को भी विकसित देशों ने ही खड़ा किया। यह नया रूपक 'दहशत' का है। एक दिलचस्प बात है कि विश्व में औजारों का सबसे बड़ा निर्यातक अमेरिका और आयातक भारत है। रक्षा उपकरणों को पूरे विश्व में मुठ्ठी भर विकसित देशों द्वारा बेचा और नव-स्वतंत्र देशों द्वारा खरीदा जा रहा है। 'दहशत' को पारिभाषिक शब्दावली 'आतंकवाद' के रूप में इन्हीं मुल्कों ने दी।

आतंकवाद को पनपने के लिए गरीब और स्थल रूद्ध देशों में माकूल स्थितियां मिली जहाँ अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी और लिंग असमानता जैसी समस्यायें बहुत बड़े स्तर पर थीं। धीरे-धीरे आतंकवाद को इन परिस्थितियों के चश्में के बजाय उन लोगों के मजहब से देखा जाने लगा। आतंकवाद का धर्म घोषित करने से बड़ा लाभ जनता को विकास, रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा, जल और जीवन जैसे प्राथमिक मुद्दों से भटकाने के लिए और साम्प्रदायिकता के विकास के लिए किया गया।

आज भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान आदि ही नहीं बल्कि फ्रांस, अमेरिका जैसे मुल्कों में लोकतन्त्र की बहस के बीच आतंकवाद केन्द्रीय मुद्दा है, मनुष्य की बुनियादी जरूरतें नहीं। देश की वैचारिक आँखें सिर्फ हिन्दू और मुसलमान में बँट चुकी हैं। ऐसे में सभी बुद्धिजीवियों, शोध छात्रों और विद्यार्थियों का दायित्व विचाराधारा के 'रेडिकल' स्तर से निकल कर भारत का नागरिक होने की हैसियत से सोचने का है। दक्षिण-वाम, अंधराष्ट्रवाद-अंधधर्मनिरपेक्षता, शिक्षा-अशिक्षा, गरीबी-अमीरी, सहिष्णुता-असहिष्णुता जैसे ध्रुवीकरण प्रकृति ने नहीं किये, यह मनुष्य ने ही किये हैं। आइये इसे खत्म करें और दुनिया को बचायें, 'फैज़' की जुबान में कहें तो -

"गुलों में रंग भरे बादे नौ बहार चले,
चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले।"

मनुष्य विवेकी

वृहत्संहिता का अध्याय 'दृकार्गल': प्राचीन भारत में भूगर्भ जल की खोज का अनूठा दस्तावेज़

डॉ० आयशा फातमी*

शोध सार

जीवन के लिये जल एक अनिवार्य पदार्थ है। मनुष्य के जीवन तथा वनस्पति की उत्पत्ति हेतु हमें नदियों, तालाबों तथा कुओं से जल प्राप्त होता है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही भारतीय मनीषियों ने जीवन की इस परम और अनिवार्य आवश्यकता का अनुभव कर भूगर्भ के जल का पता लगाने के अनेक प्रयास और प्रयोग किये थे। उन लोकहितार्थ प्रयोगकर्ता विद्वानों ने अपने अनुभव लिपिबद्ध किये होंगे परन्तु वे सब उपलब्ध नहीं हैं। इस विषय का जो ग्रन्थ मुद्रित उपलब्ध होता है वह आचार्य वराहमिहिर की वृहत्संहिता है। इस ग्रन्थ का 53वाँ अध्याय 'दृकार्गल' है। इसमें भूगर्भ के जल का ज्ञान करने, पता लगाने की विधि बताई गई है। वराहमिहिर ने इस विज्ञान को दृकार्गल कहा है, जिसका अर्थ है भूमि के अंदर के जल (दक) का लकड़ी की छड़ी (अर्गला) के माध्यम से निश्चय करना, पता लगाना। यह कला देश के अनेक भागों में अब भी काम में लायी जाती है। वराहमिहिर से पूर्व भी इस विषय के कई विद्वान भारत में हुए जिनके ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं हैं। वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ में स्वयं सारस्वत और मनु का उल्लेख किया है। वराहमिहिर के समय तक न केवल लकड़ी की छड़ी अपितु वनस्पति, मृदा, पाषाण, जीव-जन्तुओं और रत्नों के द्वारा भी पानी की खोज में सहायता ली जाती थी, पानी के स्वाद और मात्रा का ज्ञान भी कर लिया गया था तथा उन्होंने अशुद्ध पानी को शुद्ध करने के उपाय भी बताए हैं। वनस्पति विज्ञान, भू-विज्ञान और प्राणिकी विज्ञान को उन्होंने अपनी जल की खोज का आधार बताया है।

प्रस्तुत शोध पत्र में वराहमिहिर के भूगर्भ जल की खोज के महती प्रयासों और प्रयोगों और उनमें प्रयुक्त वैज्ञानिक विधियों पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही वर्तमान में उसकी आवश्यकता तथा प्रासांगिकता पर विचार किया गया है।

मुख्य बिन्दु— भूगर्भ जल, वराहमिहिर, वृहत्संहिता, दृकार्गल

* सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, नारी शिक्षा निकेतन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

●●● वीथिका ●●●

जीवन के लिये जल एक अनिवार्य आवश्यकता है। इसके अभाव में जीवन असंभव है। पंच महाभूतों में जल का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय शास्त्रों में इसे मौलिक तत्व माना गया है जबकि आधुनिक विज्ञान इसे योगज या अवस्था विशेष मात्र कहता है और इनके उत्पादक तत्वों Hydrogen और Oxygen को मौलिक तत्व, जिनकी नियत मात्रा के संयोग से जल की उत्पत्ति होती है।¹

भारत में प्राचीन काल से ही जीवन में जल की महत्ता, आवश्यकता तथा जीवन में इसकी विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान कर लिया गया था। ऋग्वैदिक मानव कहता है – “जल जो अंतरिक्ष में उत्पन्न होते हैं, जो नदी आदि में स्रोत रूप में बहते हैं, जो खोदने से उत्पन्न कूप आदि के रूप में विद्यमान हैं, जो झरने आदि के रूप में स्वयं उत्पन्न होते हैं, जो समुद्र में जाकर मिल जाते हैं और जो दीप्तिमान एवं पवित्र हैं, हे भगवन! ऐसे दिव्य गुण संपन्न जल यहाँ हमारी रक्षा करे, मुझे प्राप्त हो।”² अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी से हमारे लिये शुद्ध जल प्रवाहित करने की प्रार्थना की गई है।³ जल तत्व सहज पवित्रता एवं स्वच्छता का द्योतक है। हमने स्वार्थवश आज समस्त जलमण्डल को दूषित कर दिया है। भारतीय चिंतको ने जल संरक्षण के प्रति सजगता के लिये आरंभ से ही मर्यादायें निश्चित की थीं। मनु निर्देश देते हैं कि “जल में (कूप, बावड़ी, झरना, नदी, तालाब आदि) मूत्र, विष्टा, थूक तथा इन अपवित्र वस्तुओं से लिप्त कोई वस्तु अथवा रक्त व विष को कदापि न फेंके।”⁴

जल की चार अवस्थाएँ स्पष्ट अक्षरों में वेदों में वर्णित हैं – अम्भ, मरीचि, भर और आप्।⁵ अम्भ सूर्यमण्डल से (द्युलोक से) भी ऊर्ध्व प्रदेश में महः जनः आदि लोकों में व्याप्त है। अंतरिक्ष में जो जल व्याप्त है वह मरीचि रूप है एवं पृथ्वी के उत्पादन में जो जल अग्रसर होता है वह भर है और पृथ्वी पर प्रवाहित होने वाला या पृथ्वी को खोदने पर निकलने वाला आपः नाम से प्रसिद्ध है। इनमें सर्वप्रथम जो अम्भः नाम कहा गया है वह मौलिक तत्व है, वही पंचीकृत होकर अन्य तत्वों के सम्मिश्रण से स्थल अवस्था में आकर जल

में परिणत हुआ जिसे हम देखते हैं, जिसे पीकर अपनी प्यार बुझाते हैं तथा अन्य काम लेते हैं।⁶ अथर्ववेद के राज्याभिषेक प्रकरण के एक मंत्र में तीन प्रकार के जल का उल्लेख है –

“या आपो दिव्या पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम्।

तासां त्वा सर्वासामपामन्निषिञ्चामि वर्चसा।।”⁷

अर्थात् एक दिव्य (द्युलोक का) दूसरा अंतरिक्ष का और तीसरा पृथ्वी का जल। ऋग्वेद के उपर्युक्त मंत्र में पार्थिव जल के (भूमि संबंधी) तीन प्रकार और बताए गये हैं—

1. नदी आदि में बहने वाला
2. गढ़ा खोदने से निकलने वाला
3. अपने आप भूमि से निकलने वाला

प्रस्तुत शोध पत्र में भूमि के गर्भ में स्थित जल की खोज के प्राचीनतम भारतीय प्रयासों पर प्रकाश डाला गया है। भूमि पर जल की परम आवश्यकता का अनुभव कर प्राचीन भारतीय मनीषियों ने भूगर्भ के जल की खोज करने के महती प्रयास तथा प्रयोग किये थे। उन प्रयोगकर्ताओं ने अपने अनुभव लिपिबद्ध किये होंगे किन्तु वे सब उपलब्ध नहीं हो सके हैं। इस विषय का जो ग्रन्थ मुद्रित उपलब्ध होता है वह आचार्य वराहमिहिर की वृहत्संहिता है। वराहमिहिर केवल ज्योतिर्विज्ञान के प्राचीन आचार्यों में ही असाधारण महत्त्व नहीं रखते हैं अपितु विश्व के इतिहास और संस्कृति के आराधकों में भी अपनी ग्रन्थ संपत्ति के द्वारा अग्रणी स्थान के अधिकारी हैं।

वराहमिहिर के समय तथा निवास स्थान के विषय में कई किवदन्तियाँ विद्यमान हैं। वराहमिहिर ने स्वयं अपनी रचना वृहज्जातक के उपसंहाराध्याय में अपना परिचय दिया है जिसके अनुसार अवन्ति (अज्जैनी, वर्तमान उज्जैन) के निवासी थे। कपित्थ (वर्तमान कायथा) में सूर्यदेवता को प्रसन्न करके इन्होंने इनसे वर प्राप्त किया था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था।⁸

●●● वीथिका ●●●

वराहमिहिर ने गणित ज्योतिष तथा फलित ज्योतिष दोनों पर अपनी लेखनी चलाई है परन्तु उनकी कृतियों को देखकर कुछ विद्वानों का मानना है कि उन्हें गणित ज्योतिष की अपेक्षा फलित ज्योतिष में अधिक रुचि थी। फलित ज्योतिष का उनका ग्रन्थ वृहत्संहिता ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा अत्यन्त प्रशंसित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का 53वां अध्याय 'दृकार्गल' है। इसमें भू-गर्भ के जल का ज्ञान करने की विधि बताई गई है। वराहमिहिर ने इस विज्ञान को 'दृकार्गल' कहा है जिसका शाब्दिक अर्थ है भूमि के अंदर के जल (उदक, दक) का लकड़ी (अर्गला) की छड़ के माध्यम से निश्चय करना, पता लगाना।⁹ संभवतः यही कला इस देश में सर्वप्रथम काम में लाई गयी होगी। बाद में इसमें नयी नयी खोजें की गयी, नये प्रयोग किये गये और यह कला विज्ञान बन गई परन्तु इसका नाम दृकार्गल ही रहा। इसीलिये इस कला का यही नाम बाद में भी चलता रहा और आज भी प्रचलित है।

वराहमिहिर से पूर्व भी भूगर्भ जल के आविष्कार के महती प्रयास किये गये होंगे परन्तु दुर्भाग्यवश उनके कार्य/ग्रन्थ हमें उपलब्ध नहीं हैं। परन्तु इतना तो निश्चित है कि वराहमिहिर से पूर्व सारस्वत तथा मनु ने अवश्य ही इस विषय पर कार्य किया था क्योंकि स्वयं वराहमिहिर ने इनका उल्लेख अपनी पुस्तक वृहत्संहिता में किया है – "अभी तक जो मैंने आर्याछन्द लिखा है वह सारस्वत मुनि के रचित दृकार्गल को देखकर लिखा है। अब आगे मनु के कहे दृकार्गल को देखकर मैं उसे छन्दों में लिख रहा हूँ।"¹⁰

सारस्वत के ग्रन्थ का क्या नाम था? वे कौन थे? कब हुए? यह ज्ञात नहीं है किन्तु उनके कुछ श्लोक मिलते हैं। श्री भट्टोटपल ने अपनी वृहत्संहिता की टीका में इनका उल्लेख किया है। मनु का अब कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। केवल कुछ श्लोक मिलते हैं। इनके अतिरिक्त छठी शती ई. पू. की जातक कथाओं में भूगर्भ जल के संकेतक के रूप में कुशघास का उल्लेख प्राप्त होता है।¹¹ इससे स्पष्ट हो जाता है कि ई0पू0 छठी शताब्दी में यह कला हमारे देश में विकसित हो चुकी थी।

सामान्यतः आचार्य वराहमिहिर का समय पाँचवीं छठी शती ई0 माना

जाता है¹² और प्राचीन भारत में भूगर्भ जल की खोज की प्राचीनता छठी शती ई0पू0 तक जाती है। वराहमिहिर के समय तक न केवल लकड़ी की शाखा अपितु मिट्टी, वनस्पति, जीव जन्तुओं, पाषाण और रत्नों के द्वारा भी भूगर्भ में जल की संभावनाओं को खोज लिया गया था। यह भी ज्ञात कर लिया गया था कि पानी किस स्वाद, किस रस का प्राप्त होगा। जल की निरन्तरता तथा अशुद्ध जल को शुद्ध करने की विधि भी ज्ञात कर ली गयी थी। वृहत्संहिता में कूप निर्माण और कुएं के पानी की शुद्धि की विधि भी बताई है। यहाँ वृहत्संहिता में वर्णित विभिन्न माध्यमों से भूगर्भ जल की खोज के विषय में वर्णन किया जा रहा है:-

1. दृकार्गल द्वारा भूगर्भ जल की खोज –

विभिन्न कोषों में 'दृकार्गल' के शाब्दिक अर्थ दिये गये हैं। हलायुध कोष में दक् का अर्थ जल बताया गया है और अर्गला का अर्थ लकड़ी की छड़। श्री मोनियर विलियम्स ने अपने कोष में दृकार्गल का अर्थ- पानी की कुंजी, कुआँ खोदने के लिये भूमि का परीक्षण अथवा इस कार्य को करने के नियम से लिया है। यह व्यापक अर्थ है, इसके अन्तर्गत पानी ढूँढने की सभी विधियाँ आ जाती हैं। श्री बी0एस0 आप्टे ने अपने कोष स्टूडेन्ट्स संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी में अर्गला शब्द का अर्थ लकड़ी की पट्टी, खूँटी, छड़, सिटकनी, द्वार बंधिनी आदि दिये हैं। शब्दार्थ चितामणि कोषकार ने दृगागर्गलम शब्द का अर्थ जलरहित स्थान पर जल प्राप्त करने का विज्ञान या पूर्ण जानकारी बताया है। यही अर्थ सम्भवतः सर्वाधिक उचित प्रतीत होता है क्योंकि आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ में छड़ी (अर्गला) द्वारा जल की खोज की विधि वास्तव में नहीं दी है। वे कहते हैं – मैं (वराहमिहिर) पुण्य और यश देने वाले दृकार्गल विज्ञान को जिससे भूमि में जल की प्राप्ति होती है बताता हूँ। जिस प्रकार पुरुषों के अंगों में ऊपर और नीचे शिरायें रहती हैं, उसी प्रकार भूमि में ऊपर और नीचे (गहराई में) जल की शिरायें होती है।¹³

इस प्रकार दृकार्गल शब्द का अर्थ व्यापक है। परन्तु वर्तमान में भूगर्भ में पानी की खोज में अब भी कुछ विशेष वृक्षों की लकड़ियों को प्रयुक्त किया

●●● वीथिका ●●●

जाता है। एक बड़ा सदाबहार वृक्ष (सप्तपर्ण) जामुन, मेंहदी, गूलर तथा खजूर आदि किसी भी वृक्ष की अंग्रेजी Y अक्षर के आकार की यष्टि इस हेतु प्रयुक्त की जाती है।¹⁴ इस यष्टि की दोनों भुजाओं के सिरों को अपने दोनों हाथों की मुठ्ठियों में पकड़कर नंगे पैर भूमि पर चलने पर जहाँ भूमि के नीचे जल की धारा बह रही होगी यष्टि स्वयं झुक जायेगी अथवा हाथों में घूमने लगेगी। जिस स्थान पर ऐसा अनुभव होता है वहाँ कुंआ खोदने में सफलता मिल सकती है।¹⁵ लकड़ी की छड़ी या यष्टि द्वारा भूमि के जल का पता लगाने की विधि देश के विभिन्न भागों के जानकार लोग प्रयोग में लाते हैं। इस विधि के जानकार अधिकतर पानी बाबा के नाम से भी पुकारे जाते हैं।¹⁶

2. भूमि एवं मृदा प्रकारों द्वारा भूगर्भ जल की खोज –

वराहमिहिर संभवतः भू-विज्ञान (Geology) से भलीभांति परिचित थे। वे कहते हैं कि – “आकाश से बरसा हुआ जल एक ही रंग और एक ही स्वाद का होता है किन्तु वह भूमि की विशेषता (अनेक प्रकार की होने वाली) के कारण भूमि के समान अनेक रंगों और अनेक प्रकार के रसों (स्वादों) वाला हो जाता है। भूमि के जल की परीक्षा करनी चाहिए।”¹⁷ इस प्रकार जल के रंग और रस के परिवर्तन का सर्वप्रमुख कारण उसका भूमि के संपर्क में आना है। भूमि की पहचान से उसके अन्तर्गत जल की संभावना का प्रमाण लिया जा सकता है। “भूमि को पैर से मारने पर जिस स्थान पर गंभीर मधुर शब्द निकले उस स्थान पर साढ़े तीन पुरुष कौबेरी नाम की उत्तर दिशा से आने वाली शिरा होती है। वहाँ जल होता ही है।”¹⁸ भूमि के गुणों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है— “जो भूमि छोटे कंकड़ पत्थर वाली और तारमवर्ण की होती है उसके नीचे मिलने वाला पानी का स्वाद कसैला होता है। कपिला (राख के रंग की) भूमि के नीचे मिलने वाला पानी क्षारयुक्त होता है। आपाण्डुरा (हल्की पीली) भूमि में नमकीन पानी मिलता है और नीले रंग की भूमि में मीठा पानी मिलता है।”¹⁹ विभिन्न रंग की भूमि में विभिन्न प्रकार के जल की प्राप्ति होती है। आचार्य कहते हैं— “जो भूमि सूर्य की गर्मी से भस्म ऊँट और गधे के समान हो वह निर्जला होती है और करीरा वृक्ष (करील) जहाँ रक्तांकुर (लाल अंकुर

वाले) युक्त हों और क्षीरयुक्त (दुग्धमय) हो, भूमि रक्त (लाल) रंग की हो वहाँ पत्थर के नीचे जल निकलता है।²⁰ वराहमिहिर ने एक रंग और विकारयुक्त भूमि से भी जल ज्ञान की संभावना प्रकट की है— “जहाँ भी भूमि एक ही रंग की हो और वह तृण (घास), वृक्ष, वल्मीक (मिट्टी का स्तूप), एक जड़ वाली झाड़ी (गुल्म) से रहित हो ऐसी भूमि में जिस स्थान पर विकार (विपर्यय भिन्नता) प्रकट हो उस स्थान पर पाँच पुरुष नीचे जल मिलता है।²¹ चिकनी, सम, शब्दयुक्त (भूमि पर पैर माने से ध्वनि निकले)²² तथा गरम और ठंडी भूमि से भी जल का संकेत वराहमिहिर ने दिया है।²³ मरुभूमि (रेगिस्तान) में जल की शिराओं का ज्ञान भी वृहत्संहिता में मिलता है। वे कहते हैं — ऊँट की गर्दन जिस प्रकार टेढ़ी होती है उसी प्रकार मरुभूमि में जल की शिराएं टेढ़ी एवं अधिक नीचे होती है।²⁴

मृदा संपदा पर जो आधुनिक शोध हुए हैं उनसे ज्ञात हुआ है कि पीली, लौहकण मिश्रित, सबालुका, सशर्करा, धूसर और नीले रंग की मिट्टी के नीचे पानी होने की संभावना होती है। भारत का सबसे बड़ा मृदा समूह रक्त मृदाओं का है जिनके प्रमुख लक्षण हैं चूना, मैगनेसियम, फास्फोरस ह्यूमस का कम होना और क्षार की अधिकता²⁵। भारत की अधिकांश जनता अपनी आजीविका के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहती है। वहाँ मृदा की उर्वरकता कम हो जाने के कारण काफी गंभीर परिणाम सामने आते हैं। इनके अलावा वर्षा कम होने के कारण भी भूमिगत जल भण्डारों के खत्म होने से जल स्तर लगातार नीचे ही गिरता जा रहा है।²⁶ अतः वर्तमान समय में जल का सदुपयोग अत्यन्त आवश्यक है।

3. वनस्पति द्वारा भूगर्भ जल की खोज —

आधुनिक वनस्पति विज्ञान (Botany) के अन्तर्गत परिस्थिति विज्ञान (Ecology) में यह स्वीकार किया गया है कि कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं जो अपने निकट नीचे भूमि में पानी होने की सूचना देते हैं।²⁷ आचार्य वराहमिहिर ने भी इसका अनुभव किया था और विभिन्न श्लोकों में विभिन्न वृक्षों, फूलों, पत्तों, शाखों, घास आदि के द्वारा भूमि के अन्तर्गत जल के होने की संभावना बताई

●●● वीथिका ●●●

है। वे कहते हैं— “जिस भूमि में वृक्ष, गुल्म (एक जड़ वाला झाड़ी) लता (बेल) यह सब चिकने हों और उनके पत्ते छेद रहित हों वहाँ तीन पुरुष नीचे जल की शिरा मिलती है अथवा पद्म (कमल) क्षुर (मखाना) उशीर (खस) और गुण्ड (सरकण्डा) के कुल (जातियाँ) काशा (कांस) कुशा (कुश) नलिका (गुलशब्बो, गुलचेरी) और नल (नरकट) हों, वहाँ भी साढ़े तीन पुरुष नीचे जल मिलता है।”²⁸ खजूर, जामुन, अर्जुन (कोह) बेत यह वृक्ष जहाँ हो अथवा जहाँ गुल्म और लता यह क्षीर (दूध) वाले हों अथवा छत्र (मुचकंद) दूभ (पलाश), सागोन, साग (नागकेसर, पान) शतपत्र (पद्म, राजगेंदा, सोंफ गुलाब) नीप (कदम्ब) नक्तमाल (करंज) यह सब सिन्दुवार (निर्गुण्डी, शोफाली सम्हालु) के साथ जहाँ हो वहाँ तीन पुरुष नीचे जल मिलता है।²⁹ वराहमिहिर ने वृक्ष की शाखों के आधार पर भी भूमिगर्भ के जल की प्राप्ति की संभावना प्रकट की है। वे कहते हैं— “यदि किसी वृक्ष की एक शाखा अधिक झुकी हुई हो अथवा पाण्डुर रंग (हल्की पीली) की हो तो उस शाखा के ही नीचे तीन पुरुष गहरा खोदने पर जल मिलता है।”³⁰ वृहत्संहिता में कांटे वाले और बिना कांटें वाले वृक्षों से जल और धन की खोज की गई है। उनके अनुसार— “जहाँ कांटेदार वृक्ष, बिना कांटे वाले वृक्षों के साथ हों, अथवा कांटेदार वृक्षों के साथ में एक बिना कांटे वाला वृक्ष हो तो उस एक वृक्ष से पश्चिम दिशा में तीन हाथ से आगे पौने चार पुरुष नीचे खोदने पर जल अथवा धन होगा।”³¹ फल और पुष्पों से जल ज्ञान की विधि भी वराहमिहिर ने बताई है। जिस वृक्ष के फलों में पुष्पों में विकार आ जाए, उस वृक्ष से पूर्व दिशा में तीन हाथ से आगे चार पुरुष नीचे शिरा होती है।³² वृहत्संहिता में समीप और दूर जल बताने वाले वृक्षों का उल्लेख भी मिलता है। जैसे — “चिकने, लम्बी शाखाओं वाले, बहुत कम ऊँचे, बहुत फैले हुए जो वृक्ष होते हैं वे सभी समीप जल वाले होते हैं। इनके पास (कम गहराई पर) जल रहता है तथा ऐसे वृक्ष जिनके पत्तों में छेद हो, जर्जर हों, रूखें हों, उसके पास जल नहीं होता।”³³ उन्होंने ऐसे वृक्षों के नाम भी दिये हैं जो यदि सिन्धु हों और वल्मीक के निकट हों तो वहाँ तीन हाथ से आगे उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है।³⁴ वृहत्संहिता में जल रहित

स्थानों में जल का ज्ञान कराने वाले वृक्षों का विवरण भी दिया गया है। उदाहरणार्थ जल रहित स्थान में ऐसे वृक्ष दिखाई दें जो अनूप (बहुत जल वाले) स्थानों में होते हैं तथा खस, हरीदूब (दूबा) जहाँ अत्यन्त मृदु हों वहाँ एक पुरुष नीचे जल मिलता है।³⁵ वृहत्संहिता में मुख्य रूप से कुछ वृक्षों बेर, रोहिक,³⁶ करील,³⁷ पीलू,³⁸ कुकुथ बिल्व,³⁹ कदम्ब,⁴⁰ पलाश एवं शमी⁴¹ आदि का उल्लेख है जिनके नीचे निश्चित रूप से जल मिलता है। वराहमिहिर ने चिकने, सिन्ध और विकृत वृक्षों के नीचे भी जल ज्ञान का संकेत दिया है।⁴² घास से भी जल और धन की प्राप्ति के लक्षण वराहमिहिर ने बताए हैं। उनके अनुसार— जिस घास रहित प्रदेश में कुछ भूमि घास सहित दिखाई दें तथा जिस घास सहित प्रदेश में कुछ भूमि घास रहित दिखाई दे तो उस स्थान पर नीचे जल की शिरा है, अर्थात् जल है। उस स्थान पर नीचे धन है, यह भी कहा जा सकता है।⁴³ आधुनिक वैज्ञानिक उपर्युक्त वृक्षों, लता, गुल्मों तथा विभिन्न घासों वाली भूमि अथवा स्थान की खोज कर नये भगर्भ जल भण्डार का पता लगा सकते हैं।

4. जीव-जन्तुओं द्वारा भूगर्भ जल की खोज —

भूमि पर पाये जाने वाले प्राणी, जीव जन्तु मिट्टी के रसायनिक स्वरूप पर आधारित होते हैं। भूमि में बिल बनाकर रहने वाले प्राणियों की उपस्थिति मिट्टी की बनावट तथा आद्रता को संरक्षित रखने की क्षमता पर निर्भर करती है।⁴⁴ इसी कारण अनेक जीव जन्तुओं का भूमि में जीवित अथवा मृत पाया जाना उस स्थान के नीचे आद्रता अथवा जल की उपस्थिति प्रकट करती है। संभवतः इसी कारण वराहमिहिर ने भूमि के अंदर पानी की शिराओं का ज्ञान करने के लिए मिट्टी, वनस्पति, भूमि की उर्वरता, पाषाण, रत्न आदि के साथ साथ विभिन्न जीवों को भी स्थान दिया है। प्राणिकी विज्ञान (Zoology) से इस दिशा में मार्गदर्शन मिल सकता है। वराहमिहिर ने भूमि में मेढकों, मछली, सर्प, गोधा आदि के पाये जाने पर जल प्राप्ति की सूचना दी है। इसके अतिरिक्त छिपकली, चूहे, नेवले, बिच्छू एवं अन्य कीड़े मकौड़ों के द्वारा भी जल प्राप्ति के संकेत वृहत्संहिता में मिलते हैं:—

●●● वीथिका ●●●

मेढक द्वारा जल ज्ञान —

वे कहते हैं कि जिस किसी भी वृक्ष के नीचे यदि मेढक रहता हुआ दिखाई दे तो उस वृक्ष के उत्तर की ओर एक हाथ की दूरी पर साढ़े चार पुरुष नीचे पानी मिलता है।⁴⁵ प्रमुख रूप से जल रहित स्थान पर बेतस⁴⁶ के पास अथवा जम्बू⁴⁷ (जामुन) वृक्ष के निकट मेढक के मिलने पर जल मिलने की संभावना होती है। बिल्व (बेचकचरी) और उदुम्बर (गूलर) वृक्ष के साथ पाये जाने पर वहाँ काले मेढक की उपस्थिति तथा जल की प्राप्ति होती है।⁴⁸ पीलू वृक्ष के निकट स्थान पर खोदने पर मेढक मिलता है फिर कपिला (राख के रंग की) मिट्टी, उसके नीचे हरिता (हरी) मिट्टी होती है। उसके नीचे पत्थर तथा पत्थर के नीचे जल होता है।⁴⁹

मछली द्वारा जल ज्ञान —

वराहमिहिर कहते हैं जिस जांगल (कम पानी वाली) अथवा अनूप (अधिक पानी वाली) भूमि में इन्द्र (देवदारु) धनु (गोवृक्ष) वृक्ष, मछली, अथवा वल्मीक (मिट्टी का स्तूप) दिखाई दें वहाँ चार हाथ आगे नीचे जल मिलता है।⁵⁰ निर्जल स्थान पर कम्पिलक (कपीला) वृक्ष के नीचे अज (बकरा अथवा मेढा) की गंध के समान मछली मिलती है। उससे नीचे थोड़ा जल होता है जो क्षारयुक्त होता है।⁵¹ जम्बु (जामुन) के पूर्व दिशा में वृक्ष के समीप वल्मीक तथा कुछ खोदने पर मछली मिलती है फिर पत्थर और नीले रंग की मिट्टी मिलती है। इस स्थान पर प्रचुर और दीर्घकाल तक जल मिलता है।⁵² वल्मीक के समीप यदि निर्गुण्डि (सम्हालु) हो वहाँ आधा पुरुष खोदने पर रोहित (लाल) रंग की मछली मिलती है। कपिला (राख जैसी), पाण्डुरा (पीली) और कंकरीली मिट्टी के पश्चात जल मिलता है।⁵³

सर्प द्वारा जल ज्ञान —

उदुम्बर वृक्ष के समीप (वल्मीक हो अथवा नहीं) खोदने पर सफेद सांप फिर काला पत्थर और उसके नीचे स्वच्छ जल मिलता है।⁵⁴ पलाश और बदरी वृक्षों (वल्मीक हो अथवा नहीं) के नीचे जल तथा दुण्डुभ (विष रहित सर्प) मिलता है।⁵⁵ वल्मीक सहित कोविदार (कचनार सफेद) वृक्ष के मध्य

खोदने पर गुलाबी सर्प, लाल मिट्टी, लाल पत्थर फिर जल मिलता है।⁵⁶ महुए के वृक्ष के उत्तर में वल्मीक हो तो उसके नीचे नागराज मिलते हैं। फिर धुएँ जैसी भूमि, गुलाबी पत्थर, फिर फेनयुक्त जल मिलता है।⁵⁷ कैथ वृक्ष के दक्षिण में वल्मीक हो तो एक पुरुष खोदने पर चितकबरा साँप मिलता है। यहाँ काली मिट्टी, उसके नीचे सपाट पत्थर फिर सफेद मिट्टी मिलती है। नीचे पश्चिम दिशा में एक शिरा होती है, उससे नीचे उत्तर शिरा। दोनों शिराओं से जल आता है।⁵⁸ हरिद्र (हरदा) वृक्ष के समीप वल्मीक के पास खोदने पर नीला साँप फिर इसके नीचे जल मिलता है।⁵⁹ पीलू वृक्ष के पूर्व में वल्मीक के नीचे खोदने पर काले और सफेद रंग का साँप तथा दक्षिण दिशा में क्षारयुक्त जल की शिरा मिलती है।⁶⁰

अन्य जीव-जन्तुओं द्वारा जल ज्ञान –

वराहमिहिर ने भूमि के अंदर सफेद गोधा⁶¹ (गोह) कपिला (राख के रंग की) गोधा⁶² तथा सफेद गृहगोधिका⁶³ (छिपकली) के द्वारा भी जल ज्ञान की सूचना दी है। सफेद रंग के चूहे⁶⁴ के प्राप्ति स्थान पर भी जल मिलने की संभावना होती है। नेवले⁶⁵ तथा कछुए⁶⁶ से भी जल ज्ञान का संकेत मिलता है। वृश्चिक (बिच्छू)⁶⁷ तथा बहुत से कीड़े और कृमियों जहाँ उनके घर के बिना दिखाई दें⁶⁸ वहाँ भी डेढ़ पुरुष नीचे जल होता है। जहाँ पांच वल्मीक एक स्थान पर हों उसमें बीच वाला सफेद हो तो उस बीच वाले वल्मीक में जल की शिरा बताई गई है।⁶⁹ जांगल और अनूप भूमि में जबकि वल्मीकों की पंक्ति के मध्य यदि कोई एक वल्मीक सबसे ऊँचा हो तो उस ऊँचे वल्मीक के चार हाथ नीचे भूमि में जल की शिरा होती है।⁷⁰ कहा जा सकता है कि वराहमिहिर ने जिन जीवों की भूमि में जल होने की सूचना देने वाला माना है उन जीवों के पूरे परिवार को ही जल का सूचक समझना चाहिए। उपर्युक्त निर्देशों का पालन करने पर हमें भूगर्भ में नये जल भण्डारण का पता पता मिल सकता है।

5. रत्नों एवं शिलाओं द्वारा भूगर्भ जल की खोज –

वराहमिहिर कहते हैं कि वैदूर्यमणि (बिल्ली के नेत्र के समान काले,

●●● वीथिका ●●●

पीले रंग की मणि) की जो शिला मूंग अथवा मेघ के समान काले रंग की हो तथा जो शिला पके हुए उदुम्बर (गूलर) फल के समान रंग की हो, जो शिला तोड़ने पर अंजन (काली) के समान रंग की अथवा कपिल (राख के रंग की) रंग की हो उसके पास ही अधिक जल मिलता है।⁷¹ जो शिला स्फटिक मणि अथवा मुक्ता की प्रभा वाली हैं जो शिला इन्द्रनील मणि की है वहाँ कभी अकाल नहीं होता है।⁷²

आधुनिक विज्ञान के अनुसार पाषाणों (चट्टानों) में विशेषकर पुटभेदक (पुटदार Layered) पाषाण अपने अंदर पानी होने की सूचना देता है। वराहमिहिर के अनुसार वह शिला जो पारावत पक्षी (कबूतर) के रंग के समान है, शहद या धृत के रंग के समान है, या जो रेशमी वस्त्र के रंग के समान है या जो सोमबल्ली (सोमलता) (तम्बाकू के पत्ते जैसे रंग के पत्ते) के समान है ये सब अक्षय (जहाँ कभी न समाप्त होने वाला पानी हो) है। इनके नीचे खोदने पर जल्दी पानी आता है।⁷³ यह कहा जा सकता है कि हल्के रंग की चट्टानों के तल में जल के होने की संभावना बहुत होती है।

6. कुँओं द्वारा जल प्राप्ति –

आजकल शासन की ओर से जहाँ जल की आवश्यकता होती है वहाँ नलकूप लगाये जाते हैं। प्रायः देखने में आता है कि थोड़े ही समय बाद नलकूप से पानी मिलना बंद हो जाता है। वृहत्संहिता में कुँआ खोदने और लगातार पानी मिलते रहने की विधि का वर्णन भी मिलता है। कुँआ खोदने पर अधिकतर नीचे पत्थर निकलता है, उसके नीचे पानी होता है। अतः पत्थर तोड़कर जल प्राप्ति की जा सकती है। वराहमिहिर ने पत्थर को तोड़ने की विधियाँ⁷⁴ भी दी हैं। यद्यपि अब इन विधियों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं रही। पत्थर तोड़ने में प्रयोग होने वाले शस्त्र को तीक्ष्ण करने की विधि भी वृहत्संहिता में मिलती है।⁷⁵ वराहमिहिर ने विभिन्न दिशाओं में कूप बनाने के शुभ और अशुभ लक्षण भी बताएँ हैं।⁷⁶ वे कहते हैं कुँआ, बावड़ी तथा जलाशय आदि का काम आरंभ करने के लिये उपयुक्त नक्षत्र⁷⁷ देखकर वरुण (जल के देवता) को बलि (उपहार) देकर वट (बरगद) और बेतस (बेंत) की कीले

(खूँटियाँ) शिरा के स्थान पर गाड़कर पुष्प, गन्ध, धूप आदि से पूजा कर कुंआ खोदना आरंभ करना चाहिए।⁷⁸

जल की निरन्तर प्राप्ति, प्रदूषित जल को शुद्ध करना तथा जल को दूषित होने से बचाना आज की एक प्रमुख समस्या है। आचार्य वराहमिहिर ने कुआं खोदने पर यदि जल बेस्वाद, दुर्गन्धयुक्त निकले तो उसको शुद्ध करने, सुस्वादु बनाने, दुर्गन्ध मिटाने की विधि भी बताई है। "वे कहते हैं कि अंजन, मुस्ता (मोथा), उशीर (खस), राजकोशातक (तोरई) और आमलक (आँवला) में कतकफल (निर्मली) मिलाकर सब के साथ पीसकर कुएँ में डालना चाहिए।"⁷⁹ उपर्युक्त विधि से हम प्रदूषित जल को पुनः प्रयोग करने लायक बना सकते हैं। इससे जल निधि का संरक्षण कर उसका सदुपयोग संभव हो सकता है। वृहत्संहिता में पाल बांधकर पानी रोकने की विधि⁸⁰ तथा उनके तट पर रोपे जाने वाले वृक्षों की जानकारी भी दी गई है।⁸¹ जल निकास की व्यवस्था के विषय में वे कहते हैं कि एक तरफ जल के निकलने का द्वार बनाना चाहिए, यह द्वार पत्थर चुनकर बनाया जाए। इसे तल में रखें और उसमें ऐसा कपाट लगाए जिसमें छेद न हो। उस पर फलक (तख्ता) रखकर मिट्टी आदि से जमाकर ढाक दें।⁸² इस प्रकार वराहमिहिर न केवल भूगर्भ जल की खोज के विभिन्न माध्यमों का वर्णन करते हैं अपितु उसकी निरन्तरता तथा शुद्धिकरण के मार्ग भी सुझाते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रकृति ने हमें भूगर्भ जल के रूप में एक अमूल्य निधि प्रदान की है। इसके सदुपयोग से ही प्राणि मात्र का जीवन पृथ्वी पर संभव हो सकता है। हमारे पूर्वजों ने इस सत्य का अनुभव हजारों वर्षों पूर्व ही कर लिया था और भूगर्भ जल की प्राप्ति, सुरक्षा तथा निरन्तरता हेतु विभिन्न प्रयोगों तथा विधियों का आविष्कार कर लिया था। इसकी कारण आज हमें प्रचुर भूजल संपदा की उपलब्धि संभव हो सकी है। परन्तु हम अपने संकुचित दृष्टिकोण तथा तथाकथित विकास के नाम पर भूगर्भ जल का शोषण कर इस अमूल्य निधि का विनाश करने का अवांछित प्रयास कर रहे हैं, जिससे भविष्य में भीषण जल संकट का सामना करना पड़ सकता है। इसके

●●● वीथिका ●●●

दुष्प्रभाव जैसे सूखे, अकाल, प्रदूषित और निरंतर घटते जल स्तर के रूप में समय-समय पर हमारे सम्मुख आते रहते हैं। अतः अब समय आ गया है कि हम मिलकर अपने पूर्वजों द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयासों को क्रियान्वित करें और आने वाली पीढ़ी को यह अमूल्य जल निधि विरासत के रूप में हस्तांतरित करें ताकि पृथ्वी पर जीवन की निरन्तरता बनी रहे।

संदर्भ —

1. चतुर्वेदी, गिरिधर शर्मा, वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पटना, 1959, पृष्ठ 107
2. ऋग्वेद, 7/49/2
3. अथर्ववेद, 12/1/30
4. मनुस्मृति, 4/56
5. ऐतरेय ब्राह्मण, 1/1/1
6. चतुर्वेदी, गिरिधर शर्मा, वही, पृष्ठ 110
7. अथर्ववेद, 4/2/8/2
8. आदित्यदासतनयस्त दवाप्तबोधः, कपित्थ के सवितुलब्धवरप्रसादः
9. दृष्टव्य — India as seen in the Brahatsamhita of Varahmihir, A.M. Shastri, 1969 Delhi.
10. वृहत्संहिता, अध्याय 53, श्लोक 99
- 11- K.S. Murty, Varahmihira, the earliest hydrologist, (Water for future: Hydrology in Perspective, Proceedings of the Rome Symposium, April 1987, IAHS Publ. No. 164, 1987, Pg. 13
- 12- नवाधिकपंचशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवंगतः, ब्रह्मगुप्त टीकाकार आमराज शक 509 अर्थात् सन् 587 ई
13. अध्याय 53, श्लोक 1
14. जोशी, पंडित ईशानारायण, वराहमिहिर, जल जीवन है, दिल्ली 2004, पृष्ठ 66
15. वही वही वही

16. वही वही वही 20
17. वृहत्संहिता, अध्याय 53, श्लोक 2; K.S. Murty, वही, पृष्ठ 14
18. वही वही श्लोक 54
19. वही वही वही 104; K.S. Murty, वही, पृष्ठ 14?
20. वही वही वही 106
21. वही वही वही 90
22. वही वही वही 91
23. वही वही वही 94
24. वही वही वही 62
25. जोशी, पंडित ईशानारायण, वही, पृष्ठ 17
26. सुमन एवं सुमन, कृषि वन-वृक्ष, पर्यावरण और बौद्ध धम्म, दिल्ली 2010, पृष्ठ 121
27. प्रोसोपिस स्वाइसिजेरा, अकेसिया अरेबिका, साल्वेडोरा ओलीवाइडिस आदि, जोशी, पंडित ईशानारायण, वही, पृष्ठ 17 भारतीय पादप परिस्थिति विज्ञान, रामदेव मिश्र, जी.एस. पुरी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
28. वृहत्संहिता, वही, श्लोक, 100
29. वही..... 101
30. वही..... 55
31. वही..... 53
32. वही..... 56
33. वही..... 49
34. वही..... 50-51
35. वही..... 47
36. वही..... 72; K.S. Murty, वही, पृष्ठ 14; दृष्टव्य - Prasad E.A.V., Bioindicators for nonbiotic natural resources in Varahmihir's Brihat Samhita, International symposium on

Biological Monitoring of the state of Environment (Bioindicators).
Indian Natural Science Academy. New Delhi, 1984

37. वही
38. वही
39. वही
40. वही
41. वही
42. वही..... 92
43. वही..... 52
44. सामान्य जीव विज्ञान, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
45. वृहत्संहिता, वही, श्लोक 31
46. वही..... 6-7
47. वही..... 8
48. वही..... 18
49. वही..... 63-64
50. वही..... श्लोक 94; K.S. Murty, वही, पृष्ठ 14
51. वही..... 21-22
52. वही..... 9-10
53. वही..... 14-15
54. वही..... 11
55. वही..... 17
56. वही..... 28
57. वही..... श्लोक 36
58. वही..... वही 41-42
59. वही..... वही 45-46

60. वही..... वही 65-66
61. वही..... वही 13
62. वही..... वही 69
63. वही..... वही 16
64. वही..... वही 20
65. वही..... वही 32 एवं 71
66. वही..... वही 34 एवं 44
67. वही..... वही 73
68. वही..... वही 93
69. वही..... वही 82
70. वही..... वही 95
71. वही..... वही 107
72. वही..... वही 111
73. वही..... वही 108
74. वही..... वही 112-115
75. वही..... वही 116-117
76. वही..... वही 97-98; K.S. Murty, वही, पृष्ठ 14
77. वही..... वही 123; K.S. Murty, वही, पृष्ठ 15
78. वही..... 124
79. वही..... वही 121-122; K.S. Murty, वही, पृष्ठ 14
80. वही..... 118
81. वही..... 119
82. वही..... 120

बौद्ध संघ की भिक्षुणियां एवं उनकी वेशभूषा

डॉ० वन्दना संत*

शोध सार

बौद्ध ग्रन्थों विशेष रूप से थेरीगाथा, उसकी टीकाओं, विनयपिटक एवं धम्मपद से थेरियों (भिक्षुणियों) के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। ये ग्रन्थ उनके दैनिक क्रियाकलापों, धार्मिक कार्यों, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, भिक्षुओं के साथ उनके वार्तालाप, जन-सामान्य के साथ व्यवहार आदि की जानकारी प्रदान करते हैं। संघ का पवित्र वातावरण भिक्षुणियों को आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा देता था। हृदय की पवित्रता व शुचिता का विशेष ध्यान रखना पड़ता था। पूर्ण संयम से रहती हुई ये भिक्षुणियाँ सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धांत का अनुपालन करती थीं। उनके वस्त्रों में भी यही सादगी प्रतिबिम्बित होती थी। प्रस्तुत शोध पत्र में संघ में निवास करने वाली भिक्षुणियों की वेशभूषा एवं उससे सम्बंधित नियमों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

महत्वपूर्ण बिन्दु:- त्रिचीवर, उत्तरासंग, अन्तर्वसक, चरणपावुरण, संकच्छिक, उदकसाटिका

संघ का जीवन भौतिक वस्तुओं से परे था। एक भिक्षुणी को सिर्फ आठ चीजों को अपने पास रखने की अनुमति थी— तीन चीवर (वस्त्र), भिक्षापात्र, उस्तरा, सुई, कटिसूत्र या कमरबन्द एवं पानी छानने वाला कपड़ा। इन सभी वस्तुओं को जीवनयापन हेतु आवश्यक व पर्याप्त माना गया। इनके अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को व्यक्तिगत रूप से रखने की अनुमति नहीं थी।

वस्तुतः संघ के शांतिपूर्ण जीवन हेतु प्रत्येक भिक्षुणी सादे वस्त्र धारण करती थी जो एक समान होते थे। भिक्षुणियों के लिए त्रिचीवर का विधान रखा गया था। सभी भिक्षुणियों के पास आवश्यक रूप से एक सुई होती थी

* सहायक प्रोफेसर—प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व, नारी शिक्षा निकेतन पी०जी० कॉलेज, लखनऊ

यदि उसका चीवर फट जाता था तो सुई की मदद से उसे सिलती थी। चीवर सदैव लम्बा व ढीला ढाला होता था। इसे त्रिचीवर इसलिए कहा जाता था क्योंकि इसमें तीन वस्त्र होते थे। इनमें से एक लम्बा लबादा होता था, जिसे सबसे ऊपर पहना जाता था। इसके अतिरिक्त दो अन्य वस्त्र थे। ऊपर का या बाहरी वस्त्र **उत्तरासंग** कहलाता था एवं नीचे का व अन्दर का वस्त्र **अन्तर्वसक** कहलाता था। तीनों वस्त्र सम्मिलित रूप से त्रिचीवर कहलाते थे। चीवर सादे कपड़े का ही बनाया जाता था। इसमें किसी प्रकार की कढ़ाई, छापेदार डिजाइन या अलंकरण नहीं किया जाता था। चूंकि संघ में भिक्षुणी उच्च अध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति हेतु अग्रसर होती थी अतः यह आवश्यक था कि उनके वस्त्रों का रंग हल्का हो जो चित्त को शांति प्रदान कर सके। बौद्ध ग्रन्थों में कई स्थानों पर हल्के पीले रंग के चीवर का भी उल्लेख प्राप्त होता है। संघ के सदस्यों को पूरे नीले, गाढ़े पीले, लाल, काले या भूरे रंग के वस्त्र पहनने की अनुमति नहीं थी।³

त्रिचीवर को भिक्षुणियों की पहचान माना जाता था। जब भी कोई भिक्षुणी भिक्षा हेतु बाहर जाती थी तो उसे अनिवार्य रूप से चीवर धारण करना होता था। पहले कुछ भिक्षुणियां अन्तः व बाह्य वस्त्र पहनकर ही बाहर चली जाती थी एवं लबादा नहीं पहनती थी। उनके ऐसा करने पर जनसाधारण उनकी निंदा करते थे। तब यह घोषणा कर दी गयी कि प्रत्येक भिक्षुणी को पूर्ण चीवर धारण करना अनिवार्य होगा। यदि वह ऐसा नहीं करती है तो पाचित्तिय का दोष माना जाता था।⁴ भिक्षुणियां प्रायः बाहर जाते समय एक वस्त्र **संकच्छिक** पहनती थीं। यह वस्त्र गरदन से नाभि तक होता था। इसका उद्देश्य शरीर का ऊपरी भाग आवृत रखना था। कम से कम जब भिक्षुणी गांव जाए तो उसे यह वस्त्र अवश्य पहनना चाहिए। एक बार एक भिक्षुणी गांव गयी अचानक आयी तेज हवा से उसका वस्त्र मुंह पर आ गया जिससे उसकी कमर का हिस्सा अनावृत हो गया यह देखकर एक पुरुष ने कटाक्ष किया – 'आह इस स्त्री की कमर कितनी सुन्दर है'। पुरुष के इस ताने से वह भिक्षुणी उपहास का पात्र बन गयी।⁵ तब भविष्य में इस प्रकार की

●●● वीथिका ●●●

घटनाओं से बचने हेतु संकच्छिक को पहनना अनिवार्य कर दिया गया।

संघ में जो वस्तुएं भिक्षुणियों को अनिवार्य रूप से दी जाती थीं उन पर सिर्फ भिक्षुणी का ही अधिकार होता था। किसी भी भिक्षुणी को दूसरी भिक्षुणी का चीवर नहीं लेना चाहिए। जो भिक्षुणी दूसरी भिक्षुणी के साथ चीवर बदलकर बाद में कहे जो तुम्हारा हो वह तुम्हारा रहे, जो मेरा है वह मेरा हो। ऐसा कहकर वह भिक्षुणी चीवर छीन ले या छिनवाए तो निस्सगिय पाचित्तिय का दोष होगा।⁶ यदि किसी भिक्षुणी ने चीवर तैयार होने के लिए दिया है तो चीवर के तैयार होकर मिल जाने पर वह अतिरिक्त चीवर को दस दिनों से अधिक नहीं रख सकती। चीवर के तैयार होकर मिल जाने पर यदि भिक्षुणी को बिना समय का चीवर का कपड़ा प्राप्त हो जाए तो वह उसे ग्रहण कर सकती है। उस कपड़े का चीवर उसे दस दिनों के अन्दर बनवा लेना चाहिए। प्रत्याशा होने पर कमी की पूर्ति हेतु मास भर भिक्षुणी उसे रख सकती है। इससे अधिक रखने की अनुमति नहीं है। यदि किसी भिक्षुणी का चीवर छिन जाए या फट जाए तो ऐसी खास अवस्था में वह अज्ञातक गृहस्थ या गृहस्थिनी से स्वयं को चीवर देने के लिए कह सकती है। खास अवस्था के अतिरिक्त किसी भी भिक्षुणी का चीवर मांगना निस्सगिय पाचित्तिय का दोष माना जाता था।⁷ अन्य कई अवस्थाओं में पाचित्तिय दोष माना गया – यदि किसी गृहस्थ या गृहस्थिनी ने किसी भिक्षुणी को चीवर प्रदान करने हेतु धन रखा हो और अमुक भिक्षुणी पहले ही जाकर उस गृहस्थ या गृहस्थिनी से मनचाहा चीवर बनवाने के लिए कहें तो, यदि किसी अज्ञातक गृहस्थ या गृहस्थिनी ने किसी भिक्षुणी को दो चीवर दान हेतु धन रखा हो तो वह भिक्षुणी पहले ही जाकर दोनों चीवर के धन को मिलाकर मनचाहा चीवर बनवाने के लिए कहें तो।⁸ वास्तव में भिक्षुणियों के लिए सादे चीवर का विधान था जिसमें मनचाहा फेरबदल निषेध था जिससे संघ का अनुशासन बना रहे।

प्रायः बहुत से लोग भिक्षुणियों को चीवर दान दिया करते थे। यदि राजा, राज्य कर्मचारी, गृहस्थ या ब्राह्मण चीवर के लिए धन देकर किसी दूत या सन्देशवाहक को भिक्षुणी के पास भेजें तो उसे यह कह देना चाहिए कि वह

सिर्फ समय के अनुसार चीवर प्राप्त करती है, धन नहीं।⁹ ऐसी स्थिति में भिक्षुणी को अपना कामकाज करने वाले का पता दे देना चाहिए जो उसके लिए धन से चीवर तैयार कर दें। बाद में भिक्षुणी को बनाने वाले के पास जाकर यह कहना चाहिए कि उसे चीवर की आवश्यकता है। चीवर के लिए भिक्षुणी को कामकाज करने वाले के पास अधिक से अधिक छः बार चुपचाप खड़े हो जाना चाहिए। उससे अधिक प्रयास करने की अनुमति नहीं थी। कार्तिक की त्रैमासी पूर्णिमा के आने से दस दिन पहले ही यदि किसी भिक्षुणी को पांच से अधिक चीवर प्राप्त होते हैं वह उसे फाजिल समझकर ग्रहण कर सकती है और चीवर काल तक रख सकती है। उसके पश्चात् उसे अतिरिक्त चीवर रखने की अनुमति नहीं थी। ऐसा करने पर उस भिक्षुणी पर पचित्ति का दोष माना जाता था।¹⁰

कभी कभी भिक्षुणी पर अन्य भिक्षुणी के चीवर को तैयार करने की जिम्मेदारी दे दी जाती थी। ऐसे में भिक्षुणी को दूसरी भिक्षुणी का चीवर जल्दी ही तैयार करवा देना चाहिए। थेरीगाथा में भिक्षुणियों के लिए एक वस्त्र **कंचुक** का उल्लेख मिलता है।¹¹ गांव जाते समय प्रत्येक भिक्षुणी को यह वस्त्र धारण करना होता था।¹² वस्तुतः संघ में भिक्षुणियों के वस्त्र निश्चित परिमाण के होते थे।¹³ **लंगोट** के विषय में भी विवरण मिलता है कि यह बुद्धके बित्ते से चार बित्ता लम्बा एवं दो बित्ता चौड़ा होना चाहिए। इसी प्रकार चीवर के लिए विधान था कि वह बुद्धके बित्ते से नौ बित्ता लम्बा एवं छः बित्ता चौड़ा होना चाहिए। किसी भी भिक्षुणी को बुद्ध के चीवर के बराबर या उससे बड़ा चीवर बनवाने की अनुमति नहीं थी। यदि भिक्षुणी बड़ा चीवर बनवाए तो उसे काट देना पाचित्ति है। भिक्षुणियों का वस्त्र चारों तरफ से ढका हुआ होना चाहिए जिससे शरीर का कोई भाग अनावश्यक रूप से दिखायी न दे। प्रत्येक भिक्षुणी को गांव जाते समय सिर ढक लेना चाहिए। भिक्षुणियों के लिए ऋतुकाल का अलग वस्त्र होता था, जिसका उपयोग करने के पश्चात् उसे भली भांति धोकर रख देना चाहिए।¹⁴ इस प्रकार संघ के अथवा स्वयं के सामान में किसी प्रकार की लापरवाही नहीं करना चाहिए।

●●● वीथिका ●●●

संघ में सभी भिक्षुणियों के लिए एक ही रंग के चीवर का विधान था किन्तु कपड़े की रंगाई करने के कारण भिक्षुणियों के वस्त्रों के रंग में भिन्नता दिखायी पड़ती है। कुछ विवरणों में एक अन्य वस्त्र का उल्लेख मिलता है। यह वस्त्र लबादे के समान होता था जिसे भिक्षुणियां लपेट लेती थीं इसे **चरणपावुरण** कहा जाता था।¹⁵ यह लबादे जैसा वस्त्र इतना बड़ा होता था कि दो भिक्षुणियों के लिए पर्याप्त था परन्तु ऐसा करने की आज्ञा नहीं थी। दो भिक्षुणियों को आपस में चीवर का अदान प्रदान नहीं करना चाहिए। किसी भी भिक्षुणी को नाराजगी में अथवा ईर्ष्यावश, जानबूझकर या अनजाने में दूसरी भिक्षुणी के चीवर का नुकसान नहीं करना चाहिए। एक बार एक भिक्षुणी ने दूसरी भिक्षुणी का चीवर भिगो दिया।¹⁶ इससे वह भिक्षुणी काफी नाराज हुई। दूसरे के अधिकार की वस्तु को नुकसान पहुंचाने के कारण उस भिक्षुणी को दोषी माना गया। इस प्रकार संघ में प्रत्येक सदस्य के अधिकार को सम्मान देना अत्यंत आवश्यक माना गया। किसी के भी चीवर को चुराना अपराध था। किसी भी भिक्षुणी को किसी भी भिक्षु से चीवर नहीं लेना चाहिए चाहें वे आपस में रिश्तेदार क्यों न हों। प्रायः भिक्षु भिक्षुणी मरने के समय अपना चीवर संघ को सौंप देते थे।¹⁷ इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक भिक्षु भिक्षुणी जीवित रहते थे तो आठ वस्तुओं पर उनका अधिकार होता था। उनकी मृत्यु के पश्चात् ये वस्तुएं संघ को सौंप दी जाती थीं।

थेरीगाथा, उनकी टीकाओं, विनयपिटक एवं अन्य विवरणों से ज्ञात होता है कि भिक्षुणियों को आभूषण धारण की अनुमति नहीं थी। वस्तुतः श्रृंगार करना, आभूषण धारण करना आदि सांसारिक स्त्रियों के लिए हैं जिनका सन्यासी जीवन में कोई औचित्य नहीं है। सन्यासिनियों का जीवन सादा, उच्च एवं दिग्भ्रमित करने वाली वस्तुओं से परे होना चाहिए। जिससे उनका हृदय शांत रह सकें। भिक्षुणियों को **संघाणी** पहनने की अनुमति नहीं थी। इसकी तात्पर्य एक प्रकार की माला से है। थेरीगाथा एवं उसकी टीकाओं में आभूषणों का विवरण इस प्रकार दिया गया है – जो सिर, हाथ, पैर, गले, नितम्बों पर आते हों अथवा धारण किए जाते हों। भिक्षुणियों को कमरबन्द भी

नहीं लटकाना चाहिए। भिक्षुणियों को वीलिव पट्ट (बांस के बने पट्ट की पोंछ), चर्म पट्ट (चमड़े का कपड़ा), दुस्सपट्ट (थान), दुस्सवेणी (कपड़े को गूथकर), दुस्सपट्टी (झालर), चोल वेणी, सूत की वेणी एवं सूत की पट्टी नहीं लटकाना चाहिए।¹⁸ ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि पहले भिक्षुणियाँ संभवतः झालरदार वस्त्र व करधनी लटकाती थीं किन्तु लोग उपहास बनाते थे और कहते थे कि भिक्षुणियाँ इस प्रकार के वस्त्र पहनती हैं जैसे गृहस्थ स्त्रियाँ। तब से यह नियम बना दिया गया कि भिक्षुणियों को झालरदार वस्त्र पहनने एवं करधनी पहनने की अनुमति नहीं है।¹⁹ जो भिक्षुणी पहनेगी उसे दुक्कट का दोष होगा।

चाहें किसी प्रकार भी रास्ता क्यों न हो उन्हें चप्पल या जूता नहीं पहनना चाहिए। गांव जाते समय सिर्फ रोगिणी भिक्षुणी चप्पल या जूते पहन सकती थीं²⁰। ये जूते अलंकरणविहीन सादे होते थे। ऋतुमती भिक्षुणी को गद्दीदार चारपाइयों, चौकियों पर बैठने की अनुमति नहीं थी। ऐसी भिक्षुणियों को कटिसूत्र धारण करना चाहिए²¹। बुद्ध ने भिक्षुणियों को स्नान के वस्त्र बुनवाने की अनुमति दी जिसे पहनकर ही स्नान किया जाने लगा। इसे **उदकसाटिका** कहा जाता था। यह एक प्रकार की साड़ी थी जो भगवान के बित्ते से चार बित्ता लम्बी व दो बित्ता चौड़ी होती थी²²। श्रावस्ती की उपासिका विशाखा ने भी भिक्षुणियों के लिए स्नान वस्त्र की महत्ता समझते हुए तथागत से आठ वरों में से एक भिक्षुणियों के स्नान वस्त्र को देने की इच्छा रखी जिसे तथागत ने स्वीकार कर लिया।²³

बुद्ध का दर्शन आत्मवादी, ब्रह्मवादी और ईश्वरवादी दर्शन नहीं है, इसलिए बुद्ध के दर्शन में निराशावाद नहीं है। भिक्षुणियों के जीवन में भी श्रम की, पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा है। उनके जीवन में भोगवाद या इन्द्रियासक्ति का कोई स्थान नहीं है। उनके जीवन में सुन्दरता बाह्य-सौन्दर्य में नहीं अपितु आंतरिक सौन्दर्य में एवं मन की शुद्धता और पवित्रता में है। इसलिए भिक्षुणियों की काया काषायवस्त्र (चीवर) में भी चमकती है²⁴।

संदर्भ —

1. आई० बी० हार्नर, विमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, 1989, मोतीलाल बनारसीदास प्रा० लिमिटेड, नई दिल्ली पृ० 214
2. वही, पूर्वोद्धत पृ० 222
3. वही, पूर्वोद्धत पृ० 223
4. वही, पूर्वोद्धत पृ० 224
5. वही, पूर्वोद्धत
6. राहुल सांकृत्यायन, विनयपिटक (अनुवाद), 2006, त्रिपिटक प्रकाशन प्रतिष्ठान, दीक्षा भूमि सन्देश, नागपुर, पृ० 82
निस्सगिय पाचित्तिय के अन्तर्गत तीस अपराध बताए गए हैं । यह भिक्षा पात्र, चीवर, प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं से सम्बन्धित हैं ।
7. वही, पूर्वोद्धत पृ० 83
पाचित्तिय के अन्तर्गत 166 पापों का वर्णन है । इस भाग में वर्णित अपराधों से मुक्ति संघ के समक्ष औपचारिक रूप से अपराध की स्वीकृति से हो जाती थी ।
8. वही, पूर्वोद्धत पृ० 84-85
9. वही, पूर्वोद्धत पृ० 82 - 83
10. वही, पूर्वोद्धत पृ० 85
11. वही, पूर्वोद्धत पृ० 92
12. वही, पूर्वोद्धत
13. वही, पूर्वोद्धत पृ० 98
14. वही, पूर्वोद्धत पृ० 89
15. आई० बी० हार्नर, , पूर्वोद्धत, पृ० 224
16. वही, पूर्वोद्धत पृ० 226
17. वही, पूर्वोद्धत

18. राहुल सांकृत्यायन, विनयपिटक, पृ0 596
19. आई0 बी0 हार्नर, विमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, पृ0 227
20. आई0 बी0 हार्नर, विमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, पृ0 229
21. वही, पूर्वोद्धत पृ0 598
22. राहुल सांकृत्यायन, पूर्वोद्धत, पृ0 87
23. पॉल कारूस, बुद्ध गाथा, पृ0 70
24. विमलकीर्ति, थेरीगाथा, 2006, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 20

महाभारत में चिकित्सा विज्ञान

पूर्णिमा सिंह राना*

पंचमहाभूत द्वारा निर्मित इस मानव देह में जब तक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँचों महाभूतों का अनुपात सन्तुलित रहता है, तब तक मानव शरीर स्वस्थ रहता है तथा जब इनका अनुपात असन्तुलित हो जाता है, तब शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह मानव शरीर ही धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष की साधना में सहायक है — **शरीरमाद्य खलु धर्म साधनम्**। अतः इस शरीर को स्वस्थ रखना अत्यन्त आवश्यक है। इसी कारण रोग उत्पन्न होने पर उसका निदान तथा चिकित्सा की जाती है। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु विविध उपाय प्राप्त होते हैं। इस सन्दर्भ में आयुर्वेद को चिकित्सा विज्ञान का महान् ग्रन्थ माना गया है।

महाभारत विविध शास्त्रों से अनुस्यूत महान् ग्रन्थ है, अतः इसमें महर्षि व्यास ने विविध प्रकार के ज्ञान—विज्ञानों का उल्लेख कथानक के प्रवाह में अनायास ही कर डाला है। इस महाग्रन्थ में शरीर तथा मन दोनों के ही स्वास्थ्य को समान महत्त्व दिया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र में महाभारत में प्राप्त आष्टांगिक चिकित्सा का उल्लेख प्रयोगों तथा उदाहरणों के माध्यम से किया जाएगा। आष्टांगिक चिकित्सा आयुर्वेद का ही एक अंग है, इसके अन्तर्गत आठ प्रकार की चिकित्साएँ की जाती हैं, यथा काय चिकित्सा, शलय चिकित्सा, शालाक्य चिकित्सा, भूत चिकित्सा, कौमार—भृत्य चिकित्सा, रसायन चिकित्सा, अंगद चिकित्सा तथा वाजीकरण चिकित्सा। इस शोध पत्र में उपर्युक्त आठ प्रकार की चिकित्साओं का उल्लेख किया जाएगा।

विश्वसाहित्य में सुविख्यात सर्वाधिक विशालकाय ग्रन्थ 'महाभारत' को भारतीय संस्कृति का विश्वकोष कहा जाता है। महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित 'महाभारत' अनेक शास्त्रों से अनुस्यूत विशाल महाकाव्य है, जो

* सहायक अध्यापिका, बेसिक शिक्षा विभाग, बहराइच।

संसार की समस्त घटनाओं को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में अपने में समेटे हुए है। अतः महाभारतकार की यह उक्ति “यदहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्” सार्थक प्रतीत होती है। महर्षि व्यास ने महाभारत में कथाओं, उपाख्यानों आदि का उल्लेख करते हुए नाना प्रकार के विज्ञानों की चर्चा प्रयोगों, तर्कों तथा उदाहरणों के माध्यम से अनायास ही कर डाली है।

चिकित्सा विज्ञान –

चिकित्सा शब्द – कित् + सन् + अ + टाप के योग से बना है। चिकित्सा का सामान्य अर्थ है इलाज। इसके द्वारा मनुष्य रोगों को दूर कर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है। मानव शरीर पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से निर्मित हुआ है। जब तक ये सभी महाभूत सन्तुलित रहते हैं तब तक शरीर स्वस्थ रहता है तथा जब ये असंतुलित हो जाते हैं तो शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोगों से शरीर को मुक्त रखने के लिए चिकित्सा की जाती है। अतः मानव जीवन में चिकित्सा विज्ञान का विशेष महत्व है।

प्राचीन वैदिक ऋषियों, विद्वानों, मनीषियों आदि ने चिकित्सा विज्ञान का उल्लेख वैदिक ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर किया है। इन सन्दर्भ में “आयुर्वेद” में प्राचीन चिकित्सा विज्ञान का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार रामायण काल तथा महाभारतकाल में भी चिकित्सा विज्ञान का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है।

महाभारत तथा आष्टाङ्गिक चिकित्सा –

आयुर्वेद के अनुसार, चिकित्सा के प्रमुख रूप से आठ अंग हैं, जिन्हें आष्टाङ्गिक चिकित्सा कहा जाता है। इसके अन्तर्गत चिकित्सा के आठ प्रकार माने गये हैं यथा – काय चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, शालाक्य चिकित्सा, भूत चिकित्सा, कौमार भृत्य चिकित्सा, रसायन-चिकित्सा, अङ्गद चिकित्सा, वाजीकरण चिकित्सा।

महाभारत काल में आयुर्वेद के अनुसार आष्टाङ्गिक चिकित्सा का

●●● वीथिका ●●●

प्रयोग प्रायः लोक व्यवहार में किया जाता था। इस सन्दर्भ में महाभारत के सभा पर्व में नारद मुनि द्वारा युधिष्ठिर के प्रति प्रश्नोत्तर शैली में यह कथन मिलता है कि "तुम्हारे वैद्य अष्टाङ्ग चिकित्सा में कुशल, हितैषी, प्रेमी तथा तुम्हारे शरीर को स्वस्थ रखने के प्रयत्न में सदा संलग्न रहने वाले हैं न?"¹ इस कथन से अनुमान लगाया जा सकता है कि महाभारत काल में आठ प्रकार की चिकित्सा प्रचलित थी। नाड़ी, मल, मूत्र, जिह्वा, नेत्र रूप, शब्द तथा स्पर्श ये आठ चिकित्सा के प्रकार कहे जाते हैं।

1. काया चिकित्सा — यह दो शब्दों के योग से बना है — काय + चिकित्सा। अर्थात् **कायः सकलं शरीरं तस्य चिकित्सा काय चिकित्सा।** अतः इसके अनुसार सम्पूर्ण शरीरगत रोगों की चिकित्सा को काय चिकित्सा कहते हैं। सुश्रुत संहिता के अनुसार, शरीर के सर्वांग में होने वाले ज्वर, रक्त, पित्त शोष, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ तथा अतिसा आदि रोगों की चिकित्सा का विधान जिसमें किया जाता है, आयुर्वेद के उस अंग को 'काय-चिकित्सा' कहते हैं।² काय चिकित्सा शब्द से सम्पूर्ण शरीर अभिप्रेत है। काय शब्द अग्नि के लिए भी आता है।³ इस अग्नि के ठीक रहने से मनुष्य भी स्वस्थ तथा निरोगी रहता है। अग्नि के शान्त होने पर मनुष्य मृत हो जाता है तथा अग्नि के विकृत होने पर रुग्ण हो जाता है। इसीलिए अग्नि की चिकित्सा को काय (शरीर) की चिकित्सा कहते हैं। शरीर का आधार अग्नि है इसी कारण भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं को वैश्वानर अग्नि कहा है।⁴

महाभारत के शान्ति पर्व में राजा कराल जनक तथा महर्षि वशिष्ठ का संवाद मिलता है जिसमें नाना प्रकार के रोगों जैसे — सिरदर्द, नेत्र पीड़ा, दन्त रोग, गले में घेंघा रोग, जलोदर, ज्वर, गुलगण्ड, विषूचिका, अपस्मार आदि का उल्लेख मिलता है।⁵ इस सन्दर्भ में महाभारत के अनुशासन पर्व में भी श्री महेश्वर द्वारा जमा देवी के प्रति नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति के कारणों की विस्तृत चर्चा की गयी है।⁶

महाभारत में यक्ष्मा तथा राजयक्ष्मा नामक रोग का उल्लेख मिलता है। इन दोनों रोगों के सन्दर्भ में प्राचीनकाल से विद्वानों में मतभेद चला आ

रहा है। 'यक्ष्मा' शब्द सामान्यतः रोगवाचक है, यथा – तत्रव्याधिरामयो गदयक्ष्मा ज्वरो विकारो रोग इत्यनर्थान्तरम्।⁷ इसे सामान्य रूप से क्षय रोग (T.B.) कहा जाता है। 'राजयक्ष्मा' शब्द सम्भवतः एड्स (AIDS) रोग के लिए प्रयोग किया जाता है क्योंकि राजयक्ष्मा के लक्षण तथा प्रभाव, एड्स रोग के लक्षण तथा प्रभाव से मिलते-जुलते हैं। इस सन्दर्भ में महाभारत के उद्योग पर्व में भीष्म द्वारा दुर्योधन के समक्ष विचित्रवीर्य (कुरुवंश के पूर्वज) के विषय में वर्णन किया गया है जिसके अनुसार विचित्रवीर्य अपनी पत्नियों से अधिक आसक्त होने के कारण राजयक्ष्मा नामक रोग के शिकार हो मृत्यु को प्राप्त हो गये थे।⁸ इसके अनुसार, विचित्रवीर्य बहुपत्नी वाले थे तथा कई पत्नियों को संतुष्ट करना स्वास्थ्य हेतु उचित नहीं माना जाता है। इसीलिए वे राजयक्ष्मा रोग से ग्रसित हुए। इस सन्दर्भ में महाभारत के शल्य पर्व में चन्द्रमा के राजयक्ष्मा नामक रोग से ग्रसित होने का उल्लेख मिलता है। जिसमें राजयक्ष्मा रोग का कारण चन्द्रमा की अनेक पत्नियों का होना बताया गया है।⁹ इस सन्दर्भ में 'भारत के प्राणाचार्य' नामक पुस्तक में विद्वानों की सभा का एक प्रसंग मिलता है, जिसके अनुसार, आयुर्वेदाचार्यों की गोष्ठी में राजयक्ष्मा के सन्दर्भ में मतभेद उत्पन्न होने पर महर्षि आत्रेय द्वारा चन्द्रमा की बहुपत्नी प्रसंग का उल्लेख किया गया है।¹⁰ इस सन्दर्भ में आयुर्वेद का वृहत् इतिहास नामक पुस्तक में राजयक्ष्मा नामक रोग के लक्षण तथा प्रभाव की समानता आधुनिक युग में प्रचलित एड्स नामक रोग से की गयी है।¹¹

इस विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन विद्वानों तथा चिकित्सकों द्वारा राजयक्ष्मा नामक रोग के जो कारण तथा निदान के उपाय बताए गये हैं, उन्हें आधुनिक युग में एड्स नामक रोग के नाम से जाना जाता है। आधुनिक चिकित्सक भी बहु स्त्रियों के कारण समागम करने को इस रोग का कारण मानते हैं तथा निदान के रूप में असुरक्षित यौन सम्बन्ध से बचना ही बताते हैं।

2. शल्य चिकित्सा— यह आयुर्वेद के आष्टांगिक चिकित्सा में से सबसे प्रमुख माना गया है। इसे वर्तमान समय में सर्जरी कहा जाता है। शल्य शब्द

●●● वीथिका ●●●

शल हिंसायाम् अथवा शल-शलनम् हैं, इसे हिंसा अर्थ में लिया जाता है। जिससे शरीर में पीड़ा हो या तंतुओं की हिंसा हो वह शल्य है तथा इस प्रकार की गयी चिकित्सा **शल्य चिकित्सा** कहलाती है। आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि के अनुसार, इससे शीघ्र चिकित्सा होती है क्योंकि इसमें यंत्र, शस्त्र, क्षार से प्रयोग होने के रोग शीघ्र शान्त हो जाता है। शेष समस्त सात प्रकार की चिकित्साओं को इसकी अपेक्षा रहती है इसलिए यह शाश्वत, पुण्य, आयु के लिए उपकारी, यश का साधन, स्वर्ग देने वाला और जीविका का साधन है।¹²

प्राचीन काल में शल्य चिकित्सा अति विकसित थी। इसके साक्ष्य वैदिक ग्रन्थों, रामायण तथा महाभारत में उदाहरण के रूप में यत्र-तत्र मिल जाते हैं। इस सन्दर्भ में रामायण के सुन्दरकाण्ड में विलाप करती हुई सीता का कथन है कि “यदि राम समय पर मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो रावण मेरे अंगों को वैसे ही काट डालेगा जैसे शल्य चिकित्सक गर्भ स्थित बालक को निकालने के लिए गर्भ को तेज शस्त्रों से काट डालता है।¹³ इस कथन में सीता द्वारा शल्य चिकित्सक का उल्लेख किया गया है जिससे तत्कालीन शल्य चिकित्सा का अनुमान लगाया जा सकता है।

महर्षि व्यास ने महाभारत में अनेक स्थानों पर शल्य चिकित्सा का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में महाभारत के शान्ति पर्व में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन के प्रति सृष्टि के प्रारम्भ का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसके अनुसार इन्द्र के अण्डकोष को अश्विनीकुमारों द्वारा शल्य चिकित्सा क्रिया के माध्यम से भेड़ के अण्डकोष से स्थानान्तरित किया गया।¹⁴ यहां स्पष्ट रूप से शल्य चिकित्सा का उल्लेख किया गया है। महाभारत काल में शल्य चिकित्सक को जर्जर कहा जाता था तथा उसे अतिथि के रूप में विशेष आदर के योग्य माना जाता था। ऐसा उल्लेख महाभारत के उद्योग पर्व में विदुर द्वारा नीतियुक्त उपदेश में किया गया है।¹⁵

3. शालाक्य चिकित्सा – शालाक्य शब्द का मूलतः सम्बन्ध शलाका से माना गया है। अतः नेत्र, कान, शिरोरोग और मुख सम्बन्धी रोगों में मुख्यतः

शलाका का उपयोग होने के कारण इसे 'शालाक्य चिकित्सा' कहा जाता है।

चक्रपाणि के अनुसार, शालाक्य शब्द की व्युत्पत्ति निम्नलिखित है –
शलाका तस्याः कर्म तत्प्रधानं तंत्र शालाक्यं, शलाकया यत् कर्म क्रियते तच्छालाक्यम् ।¹⁶

महाभारत में शालाक्य चिकित्सा का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। इस सन्दर्भ में महाभारत के विराट पर्व में विशेष प्रकार के सांडों के मूत्र को सुंघाकर वन्ध्या (बांझ) स्त्री को पुत्र प्राप्त कराये जाने का वर्णन सहदेव द्वारा राजा विराट के समक्ष किया गया है।¹⁷ यहाँ महाभारतकार ने नाक द्वारा विशेष गन्ध सुंघाकर चिकित्सा किए जाने का स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि महाभारतकाल में वन्ध्या स्त्री को नस्य चिकित्सा प्रदान की जाती थी।

4. भूत चिकित्सा – इसे 'मनोचिकित्सा' के नाम से जाना जाता है। चरक संहिता में इसे उन्माद रोग के अन्दर समाविष्ट किया गया है। इसमें देव, असुर, पिशाच, नाग, ग्रह आदि के आदेश से दूषित मन वालों के लिए शान्ति, बलि आदि कर्म किए जाते हैं। आधुनिक समय में इस चिकित्सा का महत्व नहीं है परन्तु जो महत्व आज जीवाणुओं का है, वही महत्व उस काल में 'भूत' का था। भूत-प्रेत, पिशाच राक्षस आदि इन सबकी प्रवृत्ति, इनका व्यवहार आधुनिक जीवाणु विज्ञान शास्त्र के ज्ञान के साथ ठीक-ठीक मिलता है, क्योंकि दोनों (भूत तथा जीवाणु) को रक्त, मांस, वसा से प्रीति रहती है, दोनों ही अंधेरे (रात) को पसन्द करते हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन वैदिक काल में अणुवीक्ष्य यंत्र तथा आधुनिक रोग विकृति विज्ञान के साधन न होने से प्राचीन विद्वानों ने मनुष्यों से भिन्न इनकी एक नयी श्रेणी बनायी जिसे अमानुषोपसर्ग या भूत विद्या नाम दिया। इस सन्दर्भ में महाभारत के शान्ति पर्व में सूक्ष्म जीवाणुओं अथवा कृमि का उल्लेख भीष्म द्वारा युधिष्ठिर के प्रति किया गया है जिसके अनुसार, जो मूर्ख ब्राह्मण ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के मंत्रों का विप्लव करता है, वह एक कल्प तक नाना प्राणियों की विष्टाओं का

●●● वीथिका ●●●

कृमि होता है।¹⁸ इस कथन में स्पष्ट रूप से कृमि अर्थात् सूक्ष्म जीव की चर्चा की गयी है। इसी प्रकार महाभारत के शान्ति पर्व में अर्जुन द्वारा राजदण्ड की महत्ता के सन्दर्भ में युधिष्ठिर के प्रति सूक्ष्म जीवों का उदाहरण देते हुए 'भूत' शब्द का प्रयोग किया गया है।¹⁹ इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारतकाल में सूक्ष्म जीवों को भूत के नाम से सम्बोधित किया जाता था तथा तत्कालीन विज्ञान बहुत उन्नत रहा होगा क्योंकि उस समय विद्वान सूक्ष्म जीवों के रूप-आकार, प्रभाव तथा लक्षण से भली भांति परिचित थे।

5. कौमार भृत्य चिकित्सा – आयुर्वेद के अनुसार, प्रसूति तंत्र को ही कौमार भृत्य नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत प्रसूति विज्ञान से सम्बन्धित तथ्यों जैसे – सूतिकागार, गर्भावस्था, प्रसव आदि का अध्ययन किया जाता है। इस सन्दर्भ में महाभारत के उद्योग पर्व में अर्जुन के लिए सन्देश भेजते हुए कुन्ती द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति कथन मिलता है कि अर्जुन के जन्म के समय जब नारियों से घिरी मैं आश्रम के सूतिकागार में बैठी थी, उसी समय दिव्य आकाशवाणी हुई।²⁰ यहां सूतिकागार (Operation Theater) का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार रामायण के उत्तरकाण्ड के इक्तालीसवें अध्याय में 'अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः।'²¹ ऐसा उल्लेख मिलता है। सुश्रुत संहिता में 'भृत्य' की व्याख्या की गयी है, जिसके अनुसार, कुमारों (बालकों) का धारण-पोषण 'भृति' तथा इससे सम्बन्धित होने के कारण 'कौमार भृत्य' कहलाता है।²²

6. रसायन चिकित्सा – आयुर्वेद के अनुसार, रस शब्द से शरीर के रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थिमज्जा और शुक्र, इन सात धातुओं का ग्रहण होता है। जिस विज्ञान से शरीर की ये सात धातुएं बनी रहें, नवीन रूप में रहे, उसे 'रसायन विज्ञान' कहते हैं।

प्राचीन काली में ऋषियों, मनीषियों तथा विद्वानों को रसायन चिकित्सा का अदभुत ज्ञान था। इस सन्दर्भ में महर्षि च्यवन के पुनः युवावस्था प्राप्त करने की घटना लोक प्रसिद्ध है। इस कथा का उल्लेख महाभारत के

वन पर्व में लोमश द्वारा युधिष्ठिर के प्रति किया गया है जिसके अनुसार, अश्विनी कुमारों द्वारा निर्मित विशेष प्रकार के रसायन से युक्त जल में स्नान करने से वृद्ध च्यवन ऋषि युवा हो गये थे।²³ प्राचीन प्राणाचार्यों पर लिखी पुस्तक 'भारत के प्राणाचार्य के अनुसार, च्यवन ऋषि ने जिस विशेष जल में स्नान किया था उस जल में 'कुटी प्रवेशिक' नामक रसायन मिला हुआ था।²⁴ अतः इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महाभारतकाल से भी पूर्व रसायन चिकित्सा अपने चरम शिखर पर पहुंच चुकी थी।

7. अंद चिकित्सा – आयुर्वेद की आष्टांगिक चिकित्सा के अन्तर्गत इसे विषतंत्र भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत सांप, कीट आदि विषैले जन्तुओं के काटने से उत्पन्न हुए विष तथा उसके विकारों के प्रशमन का अध्ययन किया जाता है। इस चिकित्सा का प्रयोग प्राचीन काल से किया जा रहा है।

महर्षि व्यास ने महाभारत के आदि पर्व में इस चिकित्सा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार, दुर्योधन के षडयंत्र स्वरूप विषाक्त भोजन के ग्रहण करने से भीम के शरीर में व्याप्त विष का प्रभाव विषधारी सर्पों के काटने से नष्ट हो गया था।²⁵

इससे स्पष्ट होता है कि विष को विष नष्ट करता है अर्थात् स्थावर विष को जंगम विष काटता है तथा जंगम विष को स्थावर विष काटता है। इस चिकित्सा का एक लोक प्रसिद्ध उदाहरण यह भी प्राप्त होता है कि समुद्र-मन्थन से निकले हलाहल विष को धारण करने वाले भगवान शिव ने इसके प्रभाव के प्रतिरूप में गले में सर्प, सिर पर चन्द्रमा तथा जटा में गंगा को धारण किया है। जिससे स्पष्ट होता है कि स्थावर विष को जंगम विष विपरीत होने पर परस्पर उदासीन करते हैं।

आधुनिक समय में चिकित्सक भी यह बात मानते हैं कि विष ही विष को काटता है। इसका एक साक्ष्य दैनिक समाचार पत्र 'अमर उजाला' के दिनांक 6 अक्टूबर 2012 के प्रकाशन में 'जहर जो दे जिन्दगी' नामक शीर्षक

●●● वीथिका ●●●

में मिलता है जिसके अनुसार सर्प के विष में हानि रहित टॉक्सिन होता है जिससे कैंसर, डायबिटीज और हाई ब्लड प्रेशर जैसी जानलेवा बीमारियों का इलाज किया जा सकता है।²⁶

8. वाजीकरण चिकित्सा – वाज का अर्थ है शुक्र या वेग। अतः जिन विज्ञान के द्वारा मनुष्यों के शुक्र की वृद्धि हो वेग की वृद्धि होती है वह वाजीकरण चिकित्सा कहलाता है। इस चिकित्सा का प्रयोग क्लीव तथा अशक्त व्यक्तियों को शक्तिशाली तथा बलवान बनाने हेतु किया जाता है तथा यह चिकित्सा केवल पुरुषों के लिए ही होती है। सुश्रुत संहिता में इस चिकित्सा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।²⁷ यह चिकित्सा सृष्टि के संचालन में सन्तान उत्पत्ति हेतु अत्यावश्यक है।

महर्षि व्यास ने महाभारत में सांकेतिक रूप से वाजीकरण चिकित्सा का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में भीष्म द्वारा युधिष्ठिर के समक्ष ब्रह्मचर्य का विस्तृत विवेचन किया गया है जिसके अनुसार, वीर्य वृद्धि तथा वीर्योत्पादन को शान्त करने हेतु कृच्छ्रवत के आचरण के साथ-साथ जल में गोता लगाकर अघमर्षण सूक्त का जप करना चाहिए।²⁸ इससे यह प्रतीत होता है कि वाजीकरण चिकित्सा का प्रयोग महाभारत काल में भी प्रचलित था।

इस समस्त विवरण से प्रतीत होता है कि महाभारतकालीन चिकित्सा विज्ञान, वैदिक कालीन चिकित्सा पद्धति का अनुसरण करता है तथा महाभारत के रचनाकार महर्षि व्यास एक महान चिकित्सक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने महाभारत में ऐसे अद्भुत रोगों तथा चिकित्साओं का उल्लेख किया है जिनके विषय में आधुनिक वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं, यथा – राजयक्ष्मा रोग (AIDS), पुनर्यौवन प्रदान करने वाला रसायन, विष चिकित्सा आदि। यद्यपि आधुनिक विज्ञान इस क्षेत्र में द्रुतगति से विकासकर रहा है तथा नये-नये मार्ग खोज रहा है। तथापि आज से हजारों वर्ष पूर्व महर्षि व्यास द्वारा चिकित्सा के सन्दर्भ में दिए गए उपर्युक्त तथ्य इस बात का सशक्त प्रमाण प्रतीत होते हैं कि महाभारत काल में चिकित्सा विज्ञान आज की अपेक्षा बहुत उन्नत स्थिति में था।

सन्दर्भ —

1. कच्चिद् वैद्याश्चिकित्सायामष्टांगायां विशारदाः ।
सुहृदश्चानुरक्ताश्च शरीरे ते हिताः सदा ।
— महा, भा, सभा पर्व 5.91
2. काय चिकित्सा नाम सर्वांग संश्रितानां व्याधीनं ज्वररक्त पित्त
शोषोन्मादापस्मारकुष्ठातिकारादीनामुपशमानार्थम् ।
— सु. सं. सूत्र. स्था. 1.14
3. जाठरः प्राणिनामाग्निः काय इत्याभिधीयते ।
यस्तंचिकित्सेत् सदन्ति स वै कायचिकित्सकः ॥
— आयु. इति. प्रक. 5 पृ. 60
4. अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रिताः । — गीता 15.14
5. द्वन्द्वमेति च निर्द्वन्द्वस्तासु तास्विह योनिषु ।
शीर्षरोगेऽक्षिरोगे च दन्तशूले गलग्रहे ॥
उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येषोऽप्यभिमन्यते ॥
— महा.भा.शान्ति पर्व 303.5-7
6. ये पुराकामकारेण परवेश्मसु लोलुपाः ।
आढया वा दुर्गता वापि दृश्यन्ते व्याधिपीडिताः ॥
— महा. भा. अनु. पर्व 145 वाँ अध्याय पृ. 4964-4967
7. चरक संहिता (निदा. स्था) 1.3
8. दारेष्वप्याप्यतिसक्तश्च यक्ष्माणं समपद्यत ।
— महा, भा. उद्यो, पर्व 147.25
9. तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धो यक्ष्माणं पृथिवीपते ।
ससर्ज रोषात् सोमाय स चोडृपतिताविशत् ।
— महा, भा. शल्य. पर्व. 35.61
10. भारत के प्राणाचार्य पृ0 156-157

●●● वीथिका ●●●

11. आयुर्वेद का वृहद् इतिहास, अध्यय 2, पृ0 84
12. अष्टास्वापि चायुर्वेदतंत्रेषु एतदेवाधिकमभिमतम् । आशुक्रियाकरणात् यंत्र शस्त्र क्षाराग्निप्रणिघातात् । सर्वतंत्रसामान्याच्च ।।
— आयुर्वेद का इतिहास प्रकरण 5 पृ0 59
13. तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः ।
नूनं ममांगान्यचिरादनार्यः शरैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः ।।
— वा. रामा. सुन्द. का. 28.6
14. कौशिक निमित्तं चेन्द्रोमुष्कवियोग मेषवृषणत्व चावाप ।।
— महा. भा. शान्ति पर्व 342.23
15. चिकित्सकः शल्यकर्तावकीर्णा स्तेन क्रूरो मद्यापोभ्रूणहाच
सेना जीवीश्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः ।।
— महा. भा. उद्यो. पर्व 38.4
16. संस्कृत में विज्ञान पृ0 119
17. ऋषभांश्चापि जानामि राजन् पूजितलक्षणान् ।
येषां मूत्रमुपाध्याय अपि वन्ध्या प्रसूयते ।।
— महा. भा. विरा. पर्व. 10.14
18. ब्राह्मणो ऋग्यजुः साम्नां मूढः कृत्वा तु विप्लवम् ।
कल्पमेकं कृमिः सोऽथ नाना विष्टासु जायते ।।
— महा. भा. शान्ति पर्व 76.6
19. सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्क गम्यानि कानिचित् ।
पक्ष्मणोऽपिनिपातेन येषां स्यात् स्कन्धपर्ययः ।।
— महा. भा. शान्ति पर्व 15.25–26
20. अर्जुनं केशव ब्रूयास्त्वयि जाते सम सूतके ।
— महा. भा. उद्यो. पर्व 137.1
21. वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड 41.19

22. कौमाराणां भृतिर्धारणं पोषणं चेतिकुमार भृतिः ।
कुमार भृतेरिदं कौमार भृत्यम् ॥

— सुश्रुत संहिता (सूत्र.) 1.14

23. अचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः ।
ततोऽम्भश्च्यवनः शीघ्रं रूपार्थी प्रविवेश ह ॥
× × ×
तुल्यवेष धराश्चैव मनसः प्रीतिवर्धनाः ॥

— महा. भा. वन पर्व 123.16—18

24. भारत के प्राणाचार्य पृ. 271

25. अथोद्यानवरे तस्मिंस्तथा क्रीडागताश्च ते ।
× × ×
हतं सर्पविषेणैव स्थावरं जंगमेन तु ॥

— महा. भा. आदि. पर्व 127.44—57

26. दैनिक समाचर पत्र अमर उजाला, 6 अक्टूबर, 2012 पृ0 14

27. वाजीकरणतंत्र नाम अल्पदुष्टाविशुष्कक्षीणरेतसामाप्यापन
प्रसादोपचपजनननिमित्तं प्रहर्ष जननार्थञ्च ।

— सुश्रुत संहिता (सूत्र.) 1.19

28. रागोत्पन्नश्चरेत् कृच्छ्रं महार्तिः प्रविशेदयः ।
मग्नः स्वप्ने च मनसा त्रिर्जवेदघमर्षणम् ॥

— महा. भा. शान्ति पर्व 214.13

सहायक ग्रन्थ सूची

1. आयुर्वेद का इतिहास अत्रिदेव विद्यालंकार
2. गीता महर्षि वेद व्यास, अनुवादक पं. रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'
3. महाभारत महर्षि वेदव्यास, अनुवादक—साहित्याचार्य पं0 रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

●●● वीथिका ●●●

4. भारत के प्राणाचार्य किवराज रत्नाकर शास्त्री
5. रामायण महर्षि वाल्मीकि
6. सुश्रुत संहिता महर्षि सुश्रुत, टीकाकार-राजवैद्य पं, मुरलीधर शर्मा
7. संस्कृत में विज्ञान डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी
दैनिक समाचार पत्र दिनांक 6 अक्टूबर 2012 पृ० 14
'अमर उजाला'

मार्कण्डेयपुराणे अनुलेपविद्या

बुद्धदेव घोषः*

पुरति अग्रे गच्छतीति पुरा । पुरा पुरतनम् अनीति जीवयति बोधयति इति पुराणं ग्रन्थविशेषः, पुराण पूर्वकात् आदादिकात् अण् प्राणने इति धातोरचि णन्वे च कृते पुराण शब्दो निष्पद्यते ।

पुरा अतीताद् अर्थात् अणति कथयति इति व्युत्पत्तौ पुरा उपपदाद् भौवादिकाद् अण् शब्दे इति धातोः पचादित्वाद् अचि प्रत्यये सति पुराण शब्दः सिध्यति ।

आचार्य यास्केन उक्तम् –

“पुरा नवं भवति’;” ।(नि.3.19)

मद्स्य पुराणे उद्धृतम् अस्ति –

“पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विर्दुवूर्धाः” ।(53.71)

सृष्टेः आरम्भकालतः प्रलयपर्यन्तं समस्तस्य विश्वस्य क्रमवद्धोहासनिर्देशकानां भारतीयसंस्कृतेः प्रतीकानां वैदिकस्य च धर्मस्य परम्परायाश्च परिपोषकाणां सर्वविषयपरिपूर्णानामष्टादशानां महापुराणां परिचयप्रसङ्गे महर्षिणाव्यासदेवेन विष्णुपुराणे पुराणानां नामक्रमश्चेवंविधः प्रोक्तोअस्ति –

ब्राह्मं पादमं वैष्णवश्च शैवं भागवतं तथा ।

तथान्यन्तारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥

आग्नेयमष्टम् चैव भविष्यं नवमं तथ ।

दशमं ब्रह्मवैवतं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ॥

वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।

चतुर्दशं वामनकं कौमं पंचदशं तथा ॥

* एम0फिल0 गवेषकल, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग, विश्वभारती शान्तिनिकेतन, पश्चिमबंगाल

मादस्यं च गारूडं चैव ब्रह्माण्डश्च ततः परम् ।
महापुराणान्येतानि अष्टादश महामुने ॥

(मदस्यपुराण – 3.6.21–24)

मार्कण्डेयपुराणं पुराणगणनायां सप्तमं विभक्ति, परन्तु देवीभागवतानुसारमिदं द्वितियं पुराणमस्ति । मदस्यपुराणानुसारं पक्षिण उद्दिश्य धर्मपालकै मुनिभिः प्रश्ने कृते यत्र मार्कण्डेयेन मुनिना सविस्तरं धर्मार्थादीनां समस्य प्रतिपादनं कृतमस्ति तदेवास्ति मार्कण्डेयपुराणं यस्य श्लोकसंख्या नवसहस्राणि सन्ति –

यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्मान् धर्माविचक्षणाः ।
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः ॥
मार्कण्डेयेन कथितं तदसर्वं विस्तरेण तु ।

पुराणं नव साहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ॥ (53.25.26)

नारदीयपुराणे मार्कण्डेयपुराणस्य परिचयप्रसङ्गे उक्तमस्ति यद् यत्र मार्कण्डेयमुनिना महर्षि जैमिनिं प्रति प्रथमं सर्वेषाधर्माणां प्रतिपादनं कृतमस्ति तदस्ति मार्कण्डेयपुराणम् –

अथातः संप्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयामिधं मुने ।

मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम् ॥ (ना.पु.–98.1)

शिवपुराणस्यात्तरखण्डे लिखितमस्ति यत् यस्मिन् पुराणे महामुनेः वक्ता जातः तद् सप्तमं मार्कण्डेयपुराणमस्ति –

यत्र वक्ताहभवत् खण्डे मार्कण्डेयो महामुनिः ।

मार्कण्डेयपुराणं हि तदाख्यातं च सप्तमम् ॥

एवं नारदीय-मदस्य-शिव पुराणेषु यद् मार्कण्डेयपुराणस्य लक्षणमुक्तमस्ति, तत् प्रचलित मार्कण्डेयपुराणे पूर्णरूपेण प्रप्यते ।

मदस्य-नारद-ब्रह्मवैवत-श्रीमद्भागवतानुसारमत्र 9000 श्लोक

भवितुमर्हति, किन्तुपलब्धे तदपुराणे 2100 श्लोका न्युनाः सन्ति। केवलमत्र 6900 श्लोक उपलभ्यन्ते, यत्र 137 अध्यायाः सन्ति। मुद्रितं मार्कण्डेयपुराणं नरिष्यन्तचरित्रे एव समाप्तिमेति, परन्तु नारदीयपुराणस्य सूच्यनुसारमिदं पुराणमिक्ष्वाकोः कुशपर्यन्तं पुरुखसः श्रीकृष्णचरित्रं यावत् सम्यग् वर्णयित्वा समाप्तं भवितुमर्हति। अतो निश्चीयते यदस्यान्तिमो भागा नुनं लुप्तो अस्ति। तथापि सर्वे समालोचका मन्यते यदस्य पुराणस्य प्राप्तोअंशो यथातथैवास्ति। लोकप्रसिद्धा दुर्गासप्तशती अस्यैव पुराणस्यैको महत्वपूर्णो अंशो विद्यते। मार्कण्डेयपुराणस्य 81-93 अध्यायपर्यन्तं 13 अध्याया दुर्गासप्तशतीनाम्ना पृथक् प्रकशितं वर्तते सर्वत्र चोपलभ्यते।

पुराणोष्वाख्यानानां प्रसङ्गे आश्चार्यकारिणीनामनेकासामेवम्बिधानां विद्यानामुल्लेखो विद्यते, या आकर्ष्य सहसा चित्तं चमद्कृतं भवति प्रसीदति च मनोनिरन्तरम्। अधुना एकः प्रश्नः 'विद्या' किम्? ज्ञानार्थक 'विद्' धातोःसिदध्यति विद्या शब्दः। सांसारिकपदार्थस्य अध्यात्मिक-तथ्यस्य च सम्यग् ज्ञानं विद्यारूपेण कथ्यते। विद्या शब्दः ज्ञानस्य अपरं नाम। वेद्यते अनया इति विद्या इति विग्रहे ज्ञानार्थकाद् विद् धातोः विष्णन्ः विद्या शब्दः स्वगौरवं प्रकटयति। अस्मिन् असारे संसारे बहुनि वस्तुनि विद्यन्ते, किन्तु यादृक् विद्यायाः सर्वविध-वैशिष्ट्यं वर्तते न तादृगन्यस्य वस्तुनः। किं सत् किमसत् इति ज्ञानं विद्यया एव सर्वे ज्ञानन्ति यत् कः धर्मः, कः अधर्मः, कः अधर्मः, किं पापं किं सत् किमसत् इति ज्ञानं विद्यया एव जायते। विद्यया एव मनुष्याणाम् अज्ञानं नश्यति ज्ञानं च प्रस्फुटति। अनया एव सर्वे ज्ञानन्ति यत् कः धर्मः, कः अधर्मः, किं पापं किं पुन्यमिति। अखिलोहपि ब्रह्मण्डे ईदृशी कापि वस्तुः नास्ति यत् विद्ययाः समानतां करोतु। वस्तुतः विद्यानिकषापाषाणमेव तद्वस्तु येन मानवस्य पशोः च भेदं कर्तुं शक्यते। अतः नीतिशतकारेण भर्तृहरिणा - "विद्याविहीनः पशुः" इति सुपष्टमेव विद्या वैशिष्ट्यं प्रतिपादितम्।

परा-अपरा इति प्रकारेण सा विद्या द्विविधा वर्तते। तत्र च परा विद्या ब्रह्मविद्येति निगद्यते। लोके अस्मिन् प्रायः सर्व एव विद्वांसः कामयन्ते यत्

●●● वीथिका ●●●

कथमपि मोक्षप्राप्ति भवेद् । भगवती श्रुतिः — 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इति प्रकोरण ज्ञानस्य एव मोक्षोपायतां वदति । विद्या एव संसार-दावानल-दग्धस्य जन्ममरणप्रवाहपतितस्य मनुष्यस्य कृते मोक्षदायिनी वर्तते । तथा च — सा विद्या या विमुक्तये' इति सूक्तिः विदुषां मनसि समुल्लसति । 'विद्याया अमृतमश्रुते' इति श्रुतिवाक्यमपि । विद्याया एव अमृतपदवाच्यस्य मोक्षस्य प्राप्तिः भवति च इति सूचयति ।

द्वितीया च सांसारिकी विद्या अपरा विद्या इति शास्त्रेषु सुपदिष्टा । वर्तमानशताब्दयाः उत्तरार्द्धे अन्या विद्यया द्रुततरं करमोन्नतिरवाप्ता । अतो निश्चितमिदं यत् कल्पनातीतां समुन्नतिं समाश्रिता साम्प्रतम् एषा भौतिकी विज्ञान-विद्या, किन्तु एषा विज्ञान-विद्या यदा लोकोपकारिणी भवति । अपराविद्यासु अर्थात् अलौकिकविद्यासु मध्ये मार्कण्डेयपुराणे वर्णिता अनुलेपनविद्या, पदिमनीविद्या अन्यतमा भवति ।

तत्र अनुलेपनम् इति शब्दे अनु तु अव्ययम् । यस्यार्थस्तु एवम् — पश्चात्, सदृशम्, अधीनम्, निकृष्टम्, अंशः, समीपम् इति । एवं अनुलेप इति पुंलिङ्गवाचकः, अनुलेपनन्तु इति क्लीबलिङ्गवाचकः ।

मार्कण्डेयपुराणे एकस्यैवम्विधस्य विशिष्टस्य पादलेपस्य सङ्कतो वर्तते, यस्य पायोर्लेपाद् मनुष्यस्य गतिरप्रतिहता जायते, दिनाद्धे एव सहस्रयोजनयात्रायाः सामर्थ्यमागच्छति । तत्प्रयोक्तुरेकस्य मन्त्रौषधिविदो ब्रह्मणातिथेः चर्चा विद्यते, येनैकस्मै वेदवेदाङ्गपारगायाग्निहोत्रिणो ब्राह्मणाय पादलेपं प्रदाय प्रोक्तम् —

मन्त्रौषधि प्रभावेण विप्राप्रतिहता गतिः ।

योजनानां सहस्रं हि दिनाद्धेनं बजामयहम् ।।(म.पु.—61.12)

ततो जातकौतुकः सः दिनस्य पूर्वाद्धेन परार्वातष्ये इति मनसि निश्चित्य कृतनित्यक्रियो हिमालयं द्रष्टुकामनया प्रातस्तमनुलेपं पादयोरनुलिप्त तत्प्रभावेण तत्रोपस्थितः । तत्र मध्याह्ने दिनकरकिरणसन्तप्ते । हिमे भ्रमतस्तस्य पादलेपो विलीनः, येन सहस्रयोजनगमनशक्तिर्विनष्टा —

पादाक्रान्तेन तस्याथ तुहिनेन विलीयता ।

प्रथालितः पादलेपः परमौषधिसम्भवः ।।(मा.पु.-61.19)

तदनु विभ्रष्टपादलेपो जडमतिः स ब्रह्मणः सायंकालीनक्रियालोपात्
चिन्तयामास -

यदि प्रलेपो नष्टो मे विलीनो हिमवरिणा ।

शैलेअतिदुर्गमश्चायं दूरश्चाहमुपागत ।।

प्रयास्यामि क्रिया हानिमग्निशुश्रूषणादिकम् ।

कथमत्र करिष्यामि सङ्कटं महादागतम् ।।

(मा.पु.-62.28,29)

परमं वैक्लव्यमुपागतः स गार्हपत्यमस्ति संस्तुत्य तत्कृपया
स्वगृहमुपेत्य विधिवत् सायंतनं कृत्यं सम्पादयामास -

ततः क्षणोनेव तदा निजगेहमवाप्य सः ।

यथा प्रोक्तं द्विजजेष्ठश्चकार सफलाः क्रियाः ।।(मा.पु.-61.1)

गीतायामपि अनुलेपविद्यायाः उल्लेखः विद्यते। यथा -
विश्वरूपदर्शनम् इति एकादशाध्याये संजयेन उक्तम् - दिव्यमाल्यम्बरधरं
दिव्यगन्धानुलेपनम् ।

सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ।।(गीता-11.11)

अत्र संजयेन भगवतः श्रीकृष्णस्य रूपस्य वर्णना क्रियते । तत्र भगवान्
बहुः आननचक्षुयुक्तः, अद्भुतदर्शनविशिष्टः, दिव्याभरणभूषितः,
दिव्यमाल्यवस्त्रशोभितः, दिव्यन्धेनानुलिप्तः, आश्चर्यमयम् उज्ज्वलं
सर्वत्रमुखविशिष्टरूपयुक्तः भवति ।

अमरकोशेहपि अनुलेपनविषये उक्तम् - फलहेमशुल्बलोहसुसदुःस-
शुभाशुभम् ।

जलपुष्पाणि लवणं व्यंजनानयनुलेपनम् ।।

(लिंगादिसंग्रहवर्गः, 23)

●●● वीथिका ●●●

एतद्विषये अमरविवेकटीकायाम् सम्यक् व्याख्या कृता एवम् – फल फलमात्रं कपित्थमित्यादि । हलमित्यपि क्वचित्पाठः । हेम सुवर्ण कनकमित्यादि । शुल्वं ताम्रमित्यादि । शुल्वं ताम्रे यज्ञकर्मण्याचारे जलसन्निधौ इति मेदिनी । लोहं कालायसमित्यादि । सुखं शर्म शातमित्यादि । दुःखं तु कृच्छ्रं कष्टम् । शुभं कल्याणं कुशनमित्यादि । अशुभमकल्याणमित्यादि । जलपुष्पाणि । कुमुदकमलकहलारोत्पला— दीनी । लवणं सैन्धवमित्यादि । व्यंजनविशेषाणामपि दधितक्रादीनां ग्रहणम् । अनुलेपनं कुङ्कुमादि । अत्र वाधितादन्यत् इति किम् । आकाशो विहाया ह्यौः । अटवी अरण्यानीत्यादिकम् एवमन्यदप्यूह्यम् ।

अतः मार्कण्डेयपुराणे वर्णितस्याः । अनुलेपनविद्यायाः प्रासङ्गिकतायाः समर्थनम् प्रसिद्धग्रन्थेषु अपि विद्यते । अपि च इयं विद्या वर्तमाने अपि भिन्नरूपेण प्रसिद्धा ।

सहायक ग्रन्थपंजी –

1. डा. श्रुकृष्णमणि त्रिपाठी, पुराणपर्यालोचनम्-1, 2, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2012
2. आचार्य वलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2013
3. संस्कृत साहित्ये इतिहास, वन्ध्योपाध्याय धीरेन्द्रनाथ, कलकाता, प.ब.रा. पु, 2य 2009
4. तर्करत्न पंचानन, मार्कण्डेय पुराण, नवभारत प्र., वांला, कलकाता, 1390
5. शुक्ल आचार्य वदरिनाथ, मार्कण्डेय पुराण एक अध्ययन, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2003
6. तर्करत्न पंचानन, मद्स्य पुराण, नवभारत प्र., वांला, कलकाता, 1437
7. तर्करत्न पंचानन, नारदीय पुराण, नवभारत प्र., वांला कलकाता

8. श्रीमद्भगवद् गीता, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, सारार्थवर्षिणी टीका, त्रिदण्डभिक्षुभक्तिविवुध बोधायन,—1म 1998.3य 2015-09-14
9. अमरकोशः,आर.एस.तालेकार, EBL, DELHI, 1882, 2002

भारतेन्दु युगीन साहित्यिक पत्रकारिता और

भारतबन्धु

अरुण कुमार सिंह*

सन् 1857 के बाद हिन्दुस्तान में जिस नई चेतना की लहर दौड़ी उससे हिन्दी प्रदेश भी अनुप्राणित हुआ। हिन्दी प्रदेश के बौद्धिकों ने नई चेतना से लैस होकर अंग्रेजी साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए कसर कसी। इन बौद्धिकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सर्वोपरि हैं। हिन्दी साहित्य को उन्होंने रीतिकाल के मध्यकालीन चौखटे से निकालकर आधुनिक काल के रास्ते पर दौड़ा दिया था। बौद्धिक चेतना के प्रस्फुटन के लिए हिन्दी साहित्य को उन्होंने हर तरफ की पीठिका प्रदान की जिस पर चलकर आज हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है। इस कार्य के लिए उन्होंने व्यापक हिन्दी प्रदेश साहित्यकारों को एकजुट करने का भी सफल कार्य किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु के इस कार्य का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—“हरिश्चन्द्र के जीवन—काल में ही लेखकों और कवियों का एक खासा मण्डल चारों ओर तैयार हो गया। उपाध्याय पं० बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमचन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, तोताराम, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला श्रीनिवास दास, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० केशवराम भट्ट, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० राधाचरण गोस्वामी इत्यादि कई प्रौढ़ और प्रतिभाशाली लेखकों ने हिन्दी साहित्य के इस नूतन कार्य में योग दिया।”¹

भारतेन्दु मण्डल के बाबू तोताराम अलीगढ़ के नामी वकील थे। मण्डल के सारे सदस्य हिन्दी के विकास के लिए कृत संकल्प थे। इसके लिए उन्होंने अपने-अपने शहरों से पत्रिकाएँ निकालकर न केवल लेखकों की फौज खड़ी कर दी, बल्कि नित्य नवीन सूचनाओं, भावनाओं एवं विचारों से जनता के बीच नवीन विचारों का प्रचार-प्रसार किया। जनता को देश की दशा से परिचित कराने के साथ उन्हें ज्ञान-विज्ञान के विकास और स्वतंत्रता

* हिन्दी प्रवक्ता, हीरालाल बारहसैनी इण्टर कालेज, अलीगढ़।

की लड़ाई में भाग लेने के लिए तैयार करना भी इनका उद्देश्य था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतेन्दु मण्डल के सदस्यों ने पत्रिकाएँ निकाली थीं। बाबू तोताराम वर्मा ने 1877 ई० में अलीगढ़ में ही "भारत बन्धु" पत्र निकाला और भारत बन्धु प्रेस स्थापित किया। तब से लगातार बारह वर्षों तक इसका प्रकाशन होता रहा।

'भारत बन्धु' साप्ताहिक पत्र था और प्रत्येक शुक्रवार को प्रकाशित होता था। भारतेन्दु युग की पत्रकारिता की एक विशेषता पत्र के मुख्य पृष्ठ पर उसके उद्देश्य के साथ किन विषयों से सम्बन्धित उसमें लेख और विचार छपने हैं— उसका पूरा विवरण दिया जाता था। 'भारतबन्धु' के प्रथम पृष्ठ पर निम्नांकित बातें छपती थीं—

प्रथम पृष्ठ पर ही पत्रिका का मोटो संस्कृत और हिन्दी में भी छपते थे—

गमयुत जनमोहं सच्चिदानंद रूपः। वितरतु भवमुक्ति वासना
संघतापः

स भवतु मम पत्र ग्राहिणां विश्वगोपः। प्रहैरतु हृदयस्थध्वान्तमन्तः
प्रदीपः ॥

विद्या बुधि नयनीतिमय पावन परम उदार।

दिन दिन भारत बन्धु यह करहु देश उपकार ॥

प्रारम्भ में यह पत्रिका आठ पृष्ठों में प्रकाशित होती थी। प्रत्येक पृष्ठ सामान्यतः 3 कॉलमों में विभाजित होता था। 1 सितम्बर, 1882 से इसके पृष्ठों की संख्या 12 कर दी गई जिसमें 6 पृष्ठ हिन्दी के लिए निर्धारित किये गये थे और 6 पृष्ठ हिन्दी—अंग्रेजी के लिए। इससे स्पष्ट है कि यह पत्रिका द्विभाषिक थी।¹

भारतेन्दु युग की पत्रिकाओं में समसामयिक विषयों पर सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखकर सम्पादक अपनी प्रतिक्रिया जाहिर किया करते थे। ये टिप्पणियाँ समाज सुधार, ज्ञान—विज्ञान, साहित्य, राजनीति आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्ध रखती थीं। भारतबन्धु में प्रकाशित एक टिप्पणी लार्ड लिटन

●●● वीथिका ●●●

के भारत छोड़ने पर 12 मई 1980 के अंक में 'श्रीमान् लार्ड लिटन का राज्याधिकार त्यागना' शीर्षक से छपी थी।³ सम्पादक ने अपनी इस टिप्पणी में लिखा था कि —“बहुत से लोग लार्ड लिटन को यह दोष देते हैं कि उन्होंने प्रेस एक्ट जारी किया किन्तु प्रेस एक्ट से देश को कोई हानि नहीं हुई। यह तो हमारे शील को सुधारने की नई युक्ति निकल आयी क्योंकि हमारे स्वदेशी पत्रों में ऐसी-ऐसी भद्दी बातें लिख दी जाती थीं कि विदेश के लोग हमारी विद्या और बुद्धि पर आक्षेप करते थे।”⁴

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में दूसरी पत्र-पत्रिकाओं की भी नोटिस ली जाती थी और टीका-टिप्पणी भी होती थी। कलकत्ते से प्रकाशित 'सार-सुधानिधि' ने उपर्युक्त टिप्पणी पर 'भारतबन्धु की अदूरदर्शिता' नामक लम्बा लेख लिखा (सार-सुधानिधि 31 मई 1880 ई0 पृष्ठ 88-90) 'भारतबन्धु ने इसका जबाव 'सार-सुधानिधि की स्वाभाविक सौम्यता' शीर्षक से दिया था,

आपको मेरे लेख से विदित हुआ हो या ना हुआ हो, परन्तु अब मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि प्रेस एक्ट का मैं पक्षपाती या अनुमोदन करने वाला नहीं हूँ। मैं उसको इस दृष्टि से देखता हूँ, आप उसको एक और दृष्टि से देखते हैं। कौन सा मनुष्य होगा जो स्वतन्त्रता की अभिलाषा नहीं रखता और दत्त स्वतन्त्रता का छिन जाना किसको बुरा नहीं लगता।⁵

भारतेन्दु युग की मूल चेतना देश-भक्ति के साथ-साथ राजभक्ति की भी रही है इससे स्वयं भारतेन्दु भी अछूते नहीं थे किन्तु प्रेस एक्ट तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के लिए मृत्यु का संदेश लेकर आया था। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने इसका जबरदस्त विरोध किया था। इस एक्ट की सबसे खतरनाक बात प्रशासन द्वारा किसी भी पत्र-पत्रिका को राजद्रोही करार देकर सम्पादक और लेखक को जेल में डाल देना और जुर्माना वसूल करना था। इन सबसे बचने के लिए ही तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक दबे-छुपे स्वरों में प्रेस एक्ट की आलोचना के साथ अंग्रेजी राज की प्रशंसा भी कर दिया करते थे। वस्तुतः तोताराम वर्मा की 'भारतबन्धु' में

प्रकाशित इस टिप्पणी को युग के अन्तर्विरोध के साथ मिलकर ही देखा जाना चाहिए।

‘भारतबन्धु’ में लेख, कविता, उपन्यास आदि विभिन्न प्रकार की साहित्यिक रचनाएं छपती थीं। पं० सालग्राम कृत ‘मालती—माधव’ की कथा तथा मोहम्मद शेर खॉ की लिखी ‘कीर्ति—चन्द्रिका’ नामक कथा ‘भारतबन्धु’ के अंकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी।^१

‘भारतबन्धु’ के प्रसिद्ध लेखकों में श्री राधाचरण गोस्वामी का नाम अग्रगण्य है। गोस्वामी जी का ‘उपन्यास’ शीर्षक लेख और बंगला से अनूदित ‘बिराज बहू’ उपन्यास भी छपा था। इनके अतिरिक्त उनके अनेक पत्र भी ‘भारतबन्धु’ में प्रकाशित हुए थे।^१

भारतेन्दु युगीन पत्रिकाओं में ‘पुस्तक समीक्षा’ का भी स्तम्भ हुआ करता था। बहुधा यह ‘प्राप्ति स्वीकार’ शीर्षक के रूप में स्थान पाता था। यह न तो समालोचना होती थी और न ही पुस्तक समीक्षा। पुस्तक पर सम्पादक अपनी राय जाहिर कर देता था। पुस्तक की विषय वस्तु उसका मूल्य और पाठकों को यह सम्मति कि पुस्तक पढ़ने लायक है या नहीं, यही इस स्तम्भ का उद्देश्य हुआ करता था। ‘भारतबन्धु’ में भी पुस्तकों के प्राप्त होने की ऐसी ही सूचना दी जाती थी यथा—

“हमारे परम मित्र मुकुन्द राय, मित्र विलास सम्पादक की भेजी हुई, “भारतवर्ष में विख्यात नारियों के जीवन चरित्र” नामी पुस्तक हमको प्राप्त हुई। धन्यवाद पूर्वक हम उसको स्वीकार करते हैं।..... हमने उसको आद्योपान्त नहीं देखा इस हेतु इस सप्ताह में उसकी समालोचना प्रकाशित नहीं कर सकते, परन्तु इतना कह सकते हैं कि विषय और लेख अवलोकन करने से प्रकट में तो पुस्तक उत्तम मालूम देती है।^१

‘भारतबन्धु’ में देश—विदेश और स्थानीय समाचारों को भी प्रमुखता से छपा जाता था। विभिन्न पत्र—पत्रिकाओं से भी ज्ञान—विज्ञान के विभिन्न समाचार भी प्रकाशित किये जाते थे। ‘भारतबन्धु’ में विज्ञापन भी छपते थे जिनमें अधिकांशतः वर्मा जी की ही पुस्तकों का ही विज्ञापन होता था।

●●● वीथिका ●●●

भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता देश-सेवा और समाज सेवा की भावना से ओत-प्रोत होती थीं। भारतेन्दु युगीन पत्रकार व्यक्तिगत हानि सहकर भी साहित्य सृजना में लगे रहते थे। स्वयं भारतेन्दु ने अपनी सारी सम्पत्ति इसी में लगा दी। तोताराम वर्मा भी ऐसे ही साहित्य और समाज सेवक थे। उन्हें भी 'भारतबन्धु' के प्रकाशन में अत्यधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी। इन्होंने अपने इस आर्थिक संकट के बारे में सार-सुधानिधि कलकत्ता से निकलने वाले पत्र को अपनी व्यथा कथा निम्न शब्दों में व्यक्त की थी-

प्रिय बन्धो! आजकल इस देश के भरोसे पर कोई काम नहीं चल सकता। यहाँ के निवासी स्वदेश की भलाई में व्यय करना नहीं जानते इनको तो मूर्खता और चापलूसी में व्यय करना भली-भांति आता है। हम जितने राजा-महाराजा रईस और धनिक लोगों की सेवा में गये सब स्थान आदर और श्रद्धा से शून्य पाये। आपका तो महाराणा उदयपुराधीश ने कुछ सत्कार भी किया। हमसे तो किसी राजा या महाधनी का सादर स्पर्श भी नहीं हुआ। यह वह देश है जिसका नमस्कार पूर्वक परित्याग करना चाहिए, आपको विदित होगा कि यदि मेरे स्वामी मुझको केवल निजाश्रय पर सजीव रखते तो मुझको भी धीरज छोड़कर अर्न्तध्यान होना पड़ता है। अनेक सहस्त्रा मुद्रा मेरी मुद्रण सामग्री संग्रह करने में व्यय हुई और जन्मावधि से आज तक असंख्य धन हानि हुई और आगे होने की सम्भावना है, और न किसी ने हमारी विशेष सहायता की और न आगे कुछ आशा है, तथापि हमने उत्साहहीन होना उचित न समझा है।⁹

आर्थिक हानि सहकर भी तोताराम 'भारतबन्धु' निकालकर देश सेवा और हिन्दी साहित्य की सेवा करते रहे। आखिरकार तेरह वर्षों तक निकलकर 1890 में 'भारतबन्धु' बन्द हो गया।

सन्दर्भ -

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा काशी 29वां संस्करण संवत् 2051 विक्रम (पृष्ठ संख्या 252)

2. डॉ० बालकृष्ण राव, हिन्दुस्तानी त्रैमासिकी। हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद संवत् जुलाई से सितम्बर 1970 पृष्ठ संख्या 156 भाग 31
3. पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 157
4. पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 158
5. पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 158
6. पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 159
7. पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 159
8. 'भारतबन्धु' 18 जून 1880 पृष्ठ 3 हिन्दुस्तानी भाग 31 अंक 3-4 पृष्ठ संख्या 160 से उद्धृत
9. हिन्दुस्तानी अंक 3-4 पृष्ठ संख्या 161 से

नई कविता और केदारनाथ सिंह

संदीप कुमार यादव*

नई कविता के प्रमुख कवि केदारनाथ सिंह का हिन्दी साहित्य में आविर्भाव अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तीसरा सप्तक' के सहयोगी कवि के रूप में सन् 1959 ई0 में हुआ था। केदारनाथ सिंह आरम्भ से ही अपने काव्यविषय, बिम्ब-योजना, प्रतीक और काव्यभाषा के कारण एक अलग स्थान रखते हैं। इन्होंने अपनी कविता को संवेदनात्मकता और बौद्धिकता से जोड़ा। इनके सम्बन्ध में आलोचक परमानन्द श्रीवास्तव का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है— "केदार की कविताओं की दुनियाँ एक ऐसी दुनियाँ है जिनमें रंग, रोशनी, रूप, गन्ध, दृश्य एक-दूसरे में खो जाते हैं। पर यही दुनियाँ है, जिसमें कविता का 'कमिटमेंट' खो नहीं जाता— वहाँ हमें कविता के मूल सरोकार, कविता की बुनियादी चिंता, कविता का कथ्य या सन्देश (बेशक स्थूल अर्थ में नहीं) पूरी तीव्रता के साथ ध्वनित या स्पन्दित रहता है।"¹ केदारनाथ सिंह अपनी कविताओं में नई कविता के मूल्यों के प्रति पूरी तरह सजग रहे हैं। इनकी आस्था प्रगतिशील मूल्यों के प्रति है। कवि की वह दृष्टि जो बेहतर के लिए रूपाकार ग्रहण करती है, उसकी अनुगूँज इनकी रचनाधार्मिकता में विद्यमान है। 'तीसरा सप्तक' के वक्तव्य में कवि ने कहा है— "समाज के प्रगतिशील तत्त्वों और मानव के उच्चतर मूल्यों की परख मेरी रचनाओं में आ सकी है या नहीं, मैं नहीं जानता, पर उसके प्रति मेरे भीतर एक विश्वास, एक लालसा, एक लपट जरूर है, जिसे मैं हर प्रतिकूल झोंके से बचाने की कोशिश करता हूँ, करता रहूँगा।"²

केदारनाथ सिंह का नई कविता से परिचय 'तार सप्तक' के माध्यम से हुआ। 'तार सप्तक' और अज्ञेय का 'इत्यलम्' तथा गिरिजाकुमार माथुर का 'नाश और निर्माण' ने कवि के भीतर नई कविता की भूमि धीरे-धीरे तैयार की। नई कविता वास्तव में आत्म संघर्ष की कविता है। इसमें रूमानी प्रवृत्ति

* शोध-छात्र (हिन्दी विभाग) लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ।

के साथ सहजता भी देखी जा सकती है। नई कविता में प्रयोगवाद वाली कृष्ठा नहीं है, बल्कि यहाँ कवि मानसिक उमंग से परिपूर्ण है—

“नये दिन के साथ

एक पन्ना खुल गया कोरा हमारे प्यार का!

सुबह,

इस पर कहीं अपना नाम तो लिख दो।”³

केदारनाथ सिंह प्रगतिशील कवियों से अलग अपने वैचारिक और काव्य मूल्यों के लिए जाने जाते हैं। नई कविता के कवि की संवेदना अपनी पूर्ववर्ती काव्य—परम्परा से भिन्न है। हिन्दी साहित्य में हुए अनेक काव्य—आन्दोलनों के बीच नई कविता ने अपना स्थान बनाने के लिए लम्बा एवं कड़ा संघर्ष किया और उसमें सफल भी हुई। ‘अभी बिल्कुल अभी’ संग्रह की कविता ‘एक पारिवारिक प्रश्न’ में केदारनाथ सिंह इसी भाव को व्यक्त करते हैं—

“छोटे से आँगन में,

माँ ने लगाये हैं

तुलसी के बिरवे दो

पिता ने उगाया है

बदगद छतनार।

मैं अपना नन्हा गुलाब

कहाँ रोप दूँ।

मुठ्ठी में प्रश्न लिए

दौड़ रहा हूँ वन—वन,

पर्वत—पर्वत,

रेती—रेती....

लाचार।”⁴

●●● वीथिका ●●●

नई कविता की एक प्रमुख विशेषता है— साधारण मनुष्य की प्रतिष्ठा। केदारनाथ सिंह ने अपने काव्य संग्रह 'यहाँ से देखो' और अन्य संग्रहों में भी साधारण मनुष्य को काव्य का नायक बनाया है। इन कविताओं के केन्द्र में साधारण मनुष्य को प्रतिष्ठित किया गया है। कवि का दृष्टिकोण मूल रूप से साधारण मनुष्य का पक्षधर है। यहाँ पर आलोचक नन्द किशोर नवल की टिप्पणी उल्लेखनीय है— "साधारण मनुष्य या आम आदमी हिन्दी आलोचना का एक चालू मुहावरा है। केदार जी ने अपनी कविता के नायक को इस मुहावरे से नहीं उठाया, बल्कि वह अपनी जगह से चलकर उनकी कविताओं में आया है। इसका सबूत यह है कि वह हमेशा अपने परिवेश और अपने व्यक्तित्व से युक्त है, वह अकेले हो या समूह में। उसमें उम्मीद है, तो पस्ती भी और अपने को कुर्बान कर देने का जोश है, तो परिस्थितियों के आगे असहाय महसूस करने का भाव भी। कभी वह चुप रहता है और कभी मुखर हो उठता है।"⁵ केदारनाथ सिंह की अनेक कविताओं में साधारण मनुष्य केन्द्र में है— 'एक ठेठ देहाती कार्यकर्ता के प्रति', 'पानी में धिरे हुए लोग', 'कस्बे की धूल', 'जानवर', 'सुई और तागे के बीच में', 'शीतलहरी में बूढ़े आदमी की प्रार्थना', 'स्मारक', 'बबूल के नीचे सोता बच्चा', 'कन्धे की मृत्यु', 'हीराभाई' इत्यादि प्रमुख हैं। इन कविताओं में कवि ने साधारण मनुष्य की प्रतिष्ठा की है। 'पानी में धिरे हुए लोग' शीर्षक कविता में साधारण जन ही हैं जो प्रार्थना नहीं करते, पानी के खिलाफ संघर्ष करते हैं—

“मगर पानी में धिरे हुए लोग

शिकायत नहीं करते

वे हर कीमत पर अपनी चिलम के छेद में

कहीं—न—कहीं बचा रखते हैं

थोड़ी—सी आग।”⁶

केदारनाथ सिंह आस्थावादी कवि हैं। कवि की आस्था का स्वर, विरूप यथार्थ से जूझने के लिए प्रस्तुत है। दुनियाँ की बदसूरती के खिलाफ,

खूबसूरती के संकल्प की संवेदनशील परिकल्पना। यही कारण है कि उनकी कविता में धुन्ध और गर्द-गुबार से पीड़ित मानवता संघर्षरत तो है लेकिन हताश-निराश नहीं। कवि संघर्ष, पीड़ा, सत्य का संधान किसी कल्पनालोक के अमूर्त आकाश में नहीं करता है, बल्कि उसकी दृष्टि में इसका उत्स जमीनी सच्चाई में अनिवार्यतः अन्तनिर्हित है। 'यहाँ से देखो' और 'जमीन पक रही है' काव्यसंग्रह की अनेक कविताओं में आस्थावादी स्वर दिखाई पड़ता है। 'पृथ्वी रहेगी' शीर्षक कविता में कवि की आशावादिता व्यक्त हुई है—

“मुझे विश्वास है

यह पृथ्वी रहेगी

यदि और कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में

यह रहेगी जैसे पेड़ के तने में

रहते हैं दीमक

जैसे दाने में रह लेता है घुन

यह रहेगी प्रलय के बाद भी मेरे अन्दर।”⁷

नई कविता में यथार्थवाद का चित्रण हुआ है। कवियों ने अपनी कविता में लौकिकता, यथार्थवादिता, ऐन्द्रियता, वास्तविकता आदि का सूक्ष्म चित्रण किया है। केदारनाथ सिंह की अनेक कविताओं में यथार्थवाद को देखा जा सकता है। इनकी कई कविताएँ विरूप यथार्थ को उद्घाटित करती हैं। मोहक आवरण में सच की भयावहता आम आदमी तक नहीं पहुँच पाती है परन्तु कवि उसकी गहरी पहचान करता है। 'घोषणा' शीर्षक कविता में कवि सच का उद्घोष पूरी मुखरता से करता है—

मैं घोषित करता हूँ

कि जो सच है

वह सच नहीं है

जो जानता है

●●● वीथिका ●●●

उस तक खबर अभी पहुँची ही नहीं
 जो हुक्म देता है
 वह डरा हुआ है
 जो फ़ैसला देता है
 उसे पता नहीं
 वह गिरफ़्तार है ।'⁸

नई कविता ने प्रकृति को विभिन्न रूपों में अंकित किया है। इसमें प्रकृति का अंकन मात्र आलम्बनादि के रूप में ही नहीं हैं वरन् उसके माध्यम से अपने युग की संवेदना भी मुखरित हुई है। नई कविता एक ओर तो प्रकृति के अन्तर्गत विभिन्न नये और परम्परा में उपेक्षित वस्तु-दृश्यों को ग्रहण करती है और दूसरी ओर उसको सर्वथा नये रूप में अंकित करती है। नये कवियों ने प्रकृति सौन्दर्य को एक नया रूप दिया है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में खेत-खलिहान, नदी-पर्वत, शहर-गाँव के सहज जीवन के व्यापक चित्र मिलते हैं। इनकी कविता में प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में आलोचक विष्णु खरे की यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है- "केदार जी की कविताओं में कहीं भी 'प्रकृति चित्रण' केवल प्रकृति चित्रण की अय्याशी के लिए नहीं है बल्कि प्रकृति उनके यहाँ हमेशा आदमी की विभिन्न भावनाओं और परिस्थितियों के जरिए देखी गई चीज है। प्रकृति उनके लिए मानव से पलायन नहीं है बल्कि परस्पर संतुलन और मित्रता की खोज है।"⁹ केदारनाथ सिंह की 'मार्च की सुबह' में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है -

“झर झर झर.....
 झरती हैं पत्तियाँ सवेरे से,
 आज हवा पागल है!
 कौन उसे समझाये,
 कौन उसे मना करे

दूर-दूर कूलों की
ढेरों खबरें लेकर
कमरे में आती है ।''¹⁰

केदारनाथ सिंह की आरम्भिक कविताओं में वैयक्तिकता व्यक्त हुई है। नई कविता में वैयक्तिकता भी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। कवि ने अपनी अनेक कविताओं में आत्म-विवेचन, आत्म-विश्लेषण और आत्म-विमर्श को व्यक्त किया है। कवि की वैयक्तिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कविताएँ— 'प्रक्रिया', 'हस्ताक्षर कर देता हूँ', 'अपनी छोटी बच्ची के लिए एक नाम', 'अनागत', 'आत्मचित्र', 'शंका-पुत्र', 'एक पारिवारिक प्रश्न', 'पिता से', 'नीला-पत्थर', 'मैं नहीं हूँ मंत्रद्रष्टा', 'दर्पण से एक निजी बात-चीत', 'जीने के लिए कुछ शर्ते', 'कुछ सवाल अपने से', 'जिद', 'बालू का स्पर्श', 'प्रिय पाठक', 'चेहरा' आदि हैं। 'पत्नी की अट्टाइसवी पुण्यतिथि पर' नामक कविता में कवि अपनी दिवंगत पत्नी को याद कर रहा है। पत्नी के जाने के बाद कवि के अन्दर एक सूनापन आ गया है—

पहले वह गई
फिर बारी-बारी चले गए
बहुत से दिन
और ढेर सारे पक्षी
और जाने कितनी भाषाएँ
कितने जल-स्रोत चले गए दुनियाँ से
जब वह गई ।''¹¹

नई कविता के कवियों ने अपनी रचनाओं में व्यंग्य का बहुत सटीक प्रयोग किया है। व्यंग्यपरकता नई कविता की एक प्रमुख विशेषता है। केदारनाथ सिंह ने भी अपनी अनेक कविताओं में व्यंग्य का प्रयोग किया है। कवि की व्यंग्यपरकता उनके रचना संसार में नयी अर्थछवियाँ भरती हैं।

●●● वीथिका ●●●

उनकी विनोदवृत्ति, करुणा, पैनापन और बेपर्दगी कविताओं की संवादधर्मिता बढ़ाती है। 'दो मिनट का मौन' नामक कविता हमारे समय की एक अत्यन्त अप्रिय सत्य है— मात्र औपचारिकताओं का निर्वाह। कविता में व्यंग्यधर्मिता उपस्थित है—

“गिर हुए छिलके पर
 टूटी हुई घास पर
 हर योजना पर
 हर विकास पर
 दो मिनट का मौन
 इस महान् शताब्दी पर
 महान् शताब्दी के
 महान् इरादों पर
 महान् शब्दों पर
 और महान् वादों पर
 दो मिनट का मौन।”¹²

केदारनाथ सिंह नई कविता के सभी प्रमुख कवियों में अपनी काव्यभाषा, मुक्त-छन्द, बिम्ब-योजना और प्रतीकों के प्रयोग के लिए सर्वाधिक सजग रहे हैं। इन्हें भाषा का जादूगर भी कहा जाता है। कवि ने अपनी काव्यभाषा में लोकभाषा, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, तद्भव-तत्सम, देशज, विदेशी, उर्दू, अँग्रेजी सबका खुलकर प्रयोग किया है। केदारनाथ सिंह का नये शब्दों के प्रति गहरा लगाव रहा है। कुँवर नारायण की टिप्पणी है— “केदार की कविताओं में अर्थ ‘बोलते’ या ‘घोषित’ नहीं होते ‘ध्वनित’ होते हैं— भाषा में उसी तरह झंकृत होते हैं, जैसे बाघ पर एक राग ‘बजता’ है। बोलरहित संगीत की तरह एक जाने पहचाने राग के आलाप और तानें। संगीत की उपमा सोद्देश्य है। पुराने राग के सरगम को बरकरार रखते हुए वाद्यकार

जिस तरह अपनी प्रस्तुतियों में कोई नई बात पैदा करता है केदार कुछ-कुछ उसी तरह अपने बुनियादी यकीनों को नई तरह झंकृत करते हैं। इस उपक्रम में भाषा के पलटे, उपज, लयकारी फिरत वगैरह का काम अपनी तरह रोचक आकर्षण का समा बाँधता है।¹³

इस प्रकार नई कविता की प्रमुख विशेषताओं को केदारनाथ सिंह की कविता प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती है। कवि ने अपनी कविताओं में समाज में व्याप्त सभी अच्छे, बुरे और आधुनिक विचार को संवेदना के साथ व्यक्त किया है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण केदारनाथ सिंह नई कविता के प्रमुख कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. प्रतिनिधि कविताएँ— सं० परमानन्द श्रीवास्तव प्रकाशन — राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०, पहला संस्करण — 1985, पृ० सं० 06
2. तीसरा सप्तक — सं० अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण — आठवाँ — 2003, पृ० सं० 125
3. तीसरा सप्तक — सं० अज्ञेय, पृ० सं० 143—144
4. 'अभी बिल्कुल अभी' — केदारनाथ सिंह, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण — प्रथम, 1996, पृ० सं० 31
5. उत्तर केदार — सं० सुधीश पचौरी, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण — प्रथम, 1997, पृ० सं० 80
6. 'यहाँ से देखो' — केदारनाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, संस्करण — पहला, 1983, पृ० सं० 18
7. 'यहाँ से देखो' — केदारनाथ सिंह, पृ० सं० 25
8. 'यहाँ से देखो' — केदारनाथ सिंह, पृ० सं० 87
9. कवि केदारनाथ सिंह — सं० भारत यायावार, राजा खुगशाल वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण — 2004, पृ० सं० 235
10. 'अभी बिल्कुल अभी' — केदारनाथ सिंह, पृ० सं० 46

●●● वीथिका ●●●

11. 'सृष्टि पर पहरा' – केदारनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली संस्करण – पहला, 2014, पृ० सं० 73
12. 'यहाँ से देखो' – केदारनाथ सिंह, पृ० सं० 15–16
13. 'मिट्टी की रोशनी' – सं० अनिल त्रिपाठी, शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2007, पृ० सं० 13

ग्रामीण रूपान्तरण की प्रक्रिया : एक समाजशास्त्रीय विवेचना

डॉ० सत्या मिश्रा*

परिवर्तनकारी दीर्घकालीन प्रक्रियाओं के अन्तर्गत ग्रामीण सामाजिक संरचना ने आंतरिक तथा वाह्य आक्रमणों, विरोधाभासों तथा अन्तर्विरोधों को झेला है साथ ही तज्जनित नवीन प्रतिमानों को आत्मसात् भी किया है। फलतः गावों के परम्परागत स्वरूप में नवीन प्रवृत्तियाँ उदीयमान हो गई हैं और ग्रामीण समाज में व्यापक रूपान्तरण परिलक्षित हो रहे हैं।

समाजशास्त्र में ग्रामीण रूपान्तरण की विवेचना एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में हुई है। योगेन्द्र सिंह ने भारत के सामाजिक जीवन में गांवों को निर्णायक संस्था मानते हुए इसे भारतीय समाज का सूक्ष्म-स्तरीय संरचनात्मक पक्ष की संज्ञा दी है (सिंह योगेन्द्र :2006,पृ0309)। गांव प्राचीन काल से ही भारतीय समाज का अभिन्न अंग रहे है। अनेक ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर इनके अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। (दुबे,एस0सी0:2000,पृ0 9-10) भूस्वामित्व संबन्धी गहन सर्वेक्षणों के साथ-साथ ब्रिटिश प्रशासकों, मानव शास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने ग्रामीण समाज का आनुभविक अध्ययन किया। थॉमस मुनरो, चार्ल्स मेटेकाफ, हेनरी मेन, कार्ल मार्क्स तथा बेडेन पॉवेल इनमें से प्रमुख हैं। इनके द्वारा निष्पादित अध्ययनों में भारतीय गांवों को बंद तथा पृथक व्यवस्था की संज्ञा दी गई। चार्ल्स मेटेकाफ ने गावों को अखण्डित, परमाणु एवं अपरिवर्तनीय इकाई की संज्ञा दी है। उनके अनुसार "ग्रामीण समुदाय लघु गणतंत्र हैं, उनमें उनकी आवश्यकतओं की लगभग सभी वस्तुएँ पाई जाती हैं और वे सभी विदेशी संबन्धों से लगभग स्वतंत्र हैं। युद्ध होते हैं, साम्राज्य बनते हैं और बिगड़ते हैं परन्तु गाँव समाज के रूप में अपरिवर्तनीय, स्थिर एवं स्वावलम्बी होकर उभरते हैं (शर्मा: के0एल0, 2000)।

* सहायक प्रो०-समाजशास्त्र, नारी शिक्षा निकेतन, (पी0जी0 कॉलेज),लखनऊ।

●●● वीथिका ●●●

18 वीं शताब्दी में किये गये उपर्युक्त अध्ययनों द्वारा प्रचारित मतों का आगे चलकर 1950 के आस-पास किये गये अध्ययनों में तीव्र खण्डन किया गया। दुबे ने अपने भारतीय ग्राम (1955) नामक अध्ययन की भूमिका में स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया है कि हम भारतीय ग्राम समुदाय को थावर, समय-शून्य एवं परिवर्तन हीन नहीं मान सकते। समय तथा ऐतिहासिक एवं समाजशास्त्रीय शक्तियों और कारकों की अन्तः क्रीड़ाओं ने इन समुदायों की संरचना, गठन एवं आचारतत्त्व को कई महत्वपूर्ण दिशाओं में प्रभावित किया है (दुबे:2000, पृ0-10)। इसी के समकालीन श्री निवास द्वारा संपादित पुस्तक ' भारतीय ग्राम' में संकलित अनेक शोध आलेख ग्रामीण रूपान्तरण पर केन्द्रित थे। 1958 में प्रकाशित डी0एन0मजूमदार की पुस्तक ' कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इंडियन विलेज, भी ग्रामीण रूपान्तरण की आंशिक व्याख्या करती है। दुबे की 'इंडियाज़ चेंजिंग विलेज'(1958),मजूमदार की ' छोर का एक गांव (1960) नामक अध्ययन नियोजित ग्रामीण रूपान्तरण की प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरूप आ रहे प्रारम्भिक परिवर्तनों की व्याख्या करते हैं। एस0सी0दुबे ने 2001 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ' भारतीय समाज' में न्यूनाधिक रूप से गावों में प्राचीन काल से आ रहे परिवर्तनों पर दृष्टिपात किया है और इसका खण्डन किया है कि " भारतीय ग्राम नन्हें गणतंत्र हैं।" उनके अनुसार अतीत में भी उन्हें कम से कम कुछ चीजों के लिए बाहरी संसाधनों पर निर्भर रहना पड़ता था। उदाहरणार्थ प्रतिदिन के भोजन हेतु आवश्यक नमक की आपूर्ति घुमन्तू बाजारों द्वारा की जाती थी। चूड़ियाँ जो कि सुहागिन स्त्रियों का अनिवार्य श्रृगांर मानी जाती हैं, स्थानीय स्तर पर प्रत्येक स्थान पर नहीं बनायी जाती थीं। गावों के बीच अनेक वस्तुओं के लिए व्यापार होता था। बाजार केंद्रों में अनेक गावों से लोग आते थे, केन्द्रीय स्थिति वाले गावों में साप्ताहिक बाजार लगते थे। स्थानीय एवं क्षेत्रीय मेलों में बड़ी संख्या में लोग दूर-दूर से आते थे। लम्बी दूरी की तीर्थ यात्राएं प्रचलित थीं ग्राम-बहिर्विवाह प्रचलित थे। नातेदारी का संजाल विस्तृत था तथा अन्तर ग्राम पंचायतों की भी परमपरा थी।

ग्रामीण समाज के दीर्घकालीन समाज शास्त्रीय अध्ययनों द्वारा ग्रामीण रूपान्तरण के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष सामने आये हैं। वस्तुतः ग्राम्य समाज के इन आयामों में परिवर्तनों का प्रवर्तन राज्य द्वारा किये गये संस्थागत प्रयासों से संभव हुआ है। भूमि सुधार कार्यक्रम, सामुदायिक विकास योजनायें, पंचवर्षीय योजनायें, हरितक्रान्ति, चुनावी सहभागिता अथवा सार्वभौम वयस्क मताधिकार, नियोजित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन एवं पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना एवं सशक्तीकरण (लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण) इत्यादि इनमें से प्रमुख प्रयास हैं। औद्योगीकरण, नगरीकरण, परिवहन के साधनों एवं सड़कों (राजमार्गों) का विकास, शिक्षा, प्रवासन एवं तीव्र भौगोलिक-सामाजिक गतिशीलता, संचार तथा सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने ग्रामीण रूपान्तरण की प्रक्रिया को और अधिक तीव्र किया है।

ग्रामीण रूपान्तरण की प्रक्रिया का अध्ययन करने हेतु ग्रामीण समाजशास्त्र में कतिपय अवधारणाओं का प्रयोग किया गया है। यथा-बृजराज चौहान ने ग्रामीण नगरीय अन्तर्क्रिया (Rural-Urban Articulation) के 0एल0शर्मा एवं दीपांकर गुप्ता ने ग्रामीण-नगरीय गठजोड़ (Rural-Urban Nexus) तथा जी0एस0 घुर्ये ने ग्रामीण शहरीकरण (Rural-Urban Comunity) जैसी प्रक्रियाओं के द्वारा गावों में आ रहे सामाजिक सांस्कृतिक रूपान्तरण, विशेष तौर पर ग्रामीण-नगरीय सम्पर्कों के कारण आ रहे परिवर्तनों का अध्ययन किया है। नगरों में ग्रामीण व्यक्ति शिक्षा, रोजगार, व्यवसाय, बाजार, प्रशासनिक कार्यालयों एवं न्यायिक संस्थाओं में कार्य संपादन हेतु प्रवास करते हैं। यह प्रवास, भौगोलिक, सामाजिक एवं व्यवसायिक गतिशीलता को जन्म देता है। यह गतिशीलता प्रायः दो स्तरों पर घटित हुई है - प्रथम, ग्राम से नगर की ओर गतिशीलता और द्वितीय नगर से ग्राम की ओर गतिशीलता। ये प्रक्रियायें ग्रामीण समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में रूपान्तरण को जन्म देती हैं। बजराज चौहान ने रूपान्तरण हेतु ग्रामीण समाज की आन्तरिक प्रक्रियाओं के स्थान पर वाह्य

●●● वीथिका ●●●

प्रक्रियाओं को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार ग्रामीण समाज में परिवर्तन का एक प्रमुख सामाजिक-सांस्कृतिक कारक है- नागरिक समाज का हस्तक्षेप। ग्रामीण सामाजिक जीवन पर शिक्षा, परिवार नियोजन, स्वच्छता एवं स्वास्थ्य जैसे क्षेत्र में प्रयासरत ये नागरिक समाज गैर सरकारी अथवा स्वैच्छिक संगठन है। यद्यपि इस प्रकार के रूपान्तरण की गति मंद तथापि ग्रामीण परिवर्तनों में इनका महत्वपूर्ण अवदान है। रजनी कोठारी (1988) ने भारतीय समाज के रूपान्तरण में दो महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है; एक, आधुनिकीकरण एवं दूसरा, क्रान्ति। इनमें से भारतीय ग्रामीण समाज के रूपान्तरण में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की भूमिका प्रमुख रही है। आधुनिकीकरण ने दीर्घ अवधि में संरचनात्मक रूपान्तरण को उत्पन्न किया है। इसके अतिरिक्त समाजशास्त्रियों ने पश्चिमीकरण, संस्कृतीकरण, स्थानीयकरण एवं सार्वभौमीकरण के माध्यम से भी भारत में ग्रामीण रूपान्तरण की प्रक्रिया का अध्ययन किया है। जी0एस0 घुर्ये (1963) ने ग्रामीण-शहरीकरण की प्रक्रिया द्वारा आ रहे रूपान्तरण का उल्लेख किया है। उनके अनुसार इस रूपान्तरण का कारण गांवों की स्थानीय आवश्यकतायें थीं जिनका विस्तार नगरों में हुआ। नगर गांवों की कृषि उत्पादों की खपत का केन्द्र थे जिससे इनका फैलाव नगरों में हुआ और महानगर अस्तित्व में आये लेकिन वर्तमान 21वीं शताब्दी के दूसरे दशक में संचार के साधनों (मोबाइल फोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया, डी.टी.एच. के प्रयोग) एवं सूचना प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने 'विश्व गांव' जैसी परिकल्पनाओं को साकार रूप दिया है और नगरीय प्रक्रियाओं का विस्तार ही भीतरी ग्रामीण क्षेत्रों में तीव्रता से हो रहा है। साथ ही उदारीकरण वैश्वीकरण एवं निजीकरण जैसी महत् परम्पराओं का ग्रामीण लघु परम्परा में हस्तक्षेप हुआ है और ग्रामीण समाज 'ग्लोबल गांव' अथवा वैश्वीकृत समाज का सदस्य बनने की ओर अग्रसर है।

स्पष्ट है कि, ग्रामीण समुदाय की परम्परागत प्रकृति में व्यापक एवं बहुआयामी रूपान्तरण घटित हो रहा है। गांवों में अनेक ऐसी घटनायें घट

रही है जो पारम्परिक नहीं है। गांव अब विलगित नहीं रह गये हैं, वे भूमण्डलीय प्रक्रियाओं से परस्पर अन्तक्रियायें कर रहे हैं। रूपान्तरणकारी प्रक्रियाओं के चलते ग्रामीण समाज में निरन्तरता एवं परिवर्तन, परम्परा एवं आधुनिकता मिले—जुले रूप में विद्यमान है।

सन्दर्भ —

1. दुबे, श्यामाचरण, 2001, भारतीय समाज, (अनु0वंदना मिश्र), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
2. दुबे, श्यामाचरण, 1996, भारतीय ग्राम, (अनु0 योगेशअटल), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. दुबे, श्यामाचरण, 1975, इंडियाज़ चेंजिंग विलेज, बॉम्बे, एलाईड पब्लिशर्स, प्रा0 लि0।
4. शर्मा, के0एल0, 2000, भारतीय समाज, एन0सी0ई0आर0टी0
5. सिंह, योगेन्द्र, 2006, भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण, (अनु0 अरविन्द कुमार अग्रवाल), रावत पब्लिकेशंस, जयपुर।
6. सिंह, योगेन्द्र, 1999, भारत में सामाजिक परिवर्तन: संकट एवं समुत्थानपरकता, (अनु0 दीपक चौधरी), जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
7. चौहान, बृजराज, 1990, रुरल—अरबन आर्टीकुलेशन, ए0सी0ब्रदर्स, इटावा।
8. चौहान, बृजराज, 1988, भारतीय ग्रामीण समाज, ए0सी0 ब्रदर्स, इटावा।
9. श्रीनिवास, एम0एन0, 2000, भारत के गांव, (अनु0—मधु बी0 जोशी), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. देसाई, ए0आर0, 1997, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, (अनु0 हरिकृष्ण रावत, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर।
11. मजूमदार, डी.एन.: 1958, कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इंडियन विलेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

●●● वीथिका ●●●

12. मजूमदार, डी0एन0, 1960, छोर का एक गांव (अनु0 चन्द्र भाल त्रिपाठी)
एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई ।
13. घुर्ये, जी0एस0, 1963, एनॉटमी ऑफ अ रूर-अरबन कम्युनिटी, बॉम्बे,
पॉपुलर प्रकाशन ।
14. कोठारी, रजनी, 1988, ट्रासफरमेशन एंड सरवाइवल : इन रिसर्च ऑफ
हूमन वर्ल्ड ऑर्डर, अजंता पब्लिकेशंस, नई दिल्ली ।

Women entrepreneurship in India at Cross-Roads

Dr. Sandhya Pandey*

Prachita Pandey**

Women entrepreneur may be defined as a woman or a group of women who innovates, initiates or organizes and operates a business enterprise. the government of India defines a woman entrepreneur as, "an enterprise owned and controlled by a woman? Just as entrepreneurs, women entrepreneurs are those women who generate business ideas or select the best opportunity, mobilize resources, combine the factors of production, undertake risks and operate the enterprise in the most effective way to earn profit.

Some examples about the status of women in the area of entrepreneurship include.

Women won one-third of Small business in USA and Canada of total workforce is being covered by women in Asian Countries. In China, women outnumber men by at least two times in entrepreneurship. This shows that women have desires and aspire to enter entrepreneurship and want to succeed in all the fields at par with men.

Like male entrepreneurs, women entrepreneurs perform various functions of different nature. Some of them are:

Generating new business ideas, undertaking risks, decision making in economic crisis, introducing new invocations etc.

Indian women has been able to overcome the hurdle of society's perception of considering her to be confined in the four walls of the entrepreneur caught up in the limited areas of business such as papad making, pickle making, painting and handicrafts etc.

*Associate professor, Sociology, Jagat taran girls degree college, Allahabad

**M.A. (English)

There has been a remarkable shift of women from these small scale businesses towards modern, technology based business ventures such as –

Computer services and information technology, computer maintenance, quality control labs, travel and tourism, establishing recreation and culture centers screen-printing, photography, video shooting, Mini laundry and community kitchens etc.

There are also opportunities for woman in semi-urban and rural areas. These are those projects which are considered to have low investment and low technical know-how. These are production of liquid soap, detergents, Readymade instant food products, office stationary, child care centres, coaching classes, nursery classes, garment industry etc.

In-the recent industrial policy, the govt. has been importance to agro-based products and allied products. As we know that only one or two of the total production of fruits and vegetables is processed every year in India, so the scope for funds, fruits and vegetable processing industry would be fruitful for women. There are plenty of opportunities for baby food, cold drinks and canned foods and traditional medicine preparations.

In spite of various efforts, women entrepreneurs are facing various problems, they may be categorized as 'general problems' and 'specific problems' the problems in gathering finance is regarded as "Life-blood" for any enterprise be it big or small. However, women entrepreneurs suffer from shortage of funds on two counts, firstly, women do not generally have property in their names. So the eternal source of fund becomes very limited. Secondly, the bank also considers women less credit-worthy and discourage women borrowers on the belief that they can at any time block their business. In these situations women are bound to rely on their own savings and some loan from their friends and

relatives.

Next problem is regarding raw material and necessary inputs. This problem becomes more serious as women do not get raw materials on credit or on a very minimum discount. This shortage of funds also hampers their business as they do not have organization setup for canvassing and advertisement and they have to face a stiff competition advertising their products.

Second problem due to our society structure and their status in family and society. In our male-dominated society, women suffer from male reservation over women's role ability and capacity. Though the constitution of India speaks of equality between sexes, even then in our male patriarchal society women are not treated equal to men and this serves as a hurdle to the entry of women into business. With this problem their mobility is also related. Unlike, men, women mobility is highly limited due to various reasons. Such as, a single women asking for room on rent still looked upon with suspicion and also the humiliating attitude of concerning officers towards women compels them to give up the idea of starting an enterprises.

Lastly, our family ties because, in India it is mainly a woman's duty to look after the children and other members of the family. A married woman has to strike a fine balance between her business and family. Her total involvement in family leaves little or no energy and time for her to devote for business. Support and approval of husbands is a necessary condition for women's entry into business. Besides this, the educational level and family background of husband influenced women's entry into business activities.

Over all these problems is the problem of education of women. In India, around three-fifth, 60% of women are still illiterate. Illiteracy is the root cause of major socio-economic

problems. Due to lack of education and qualitative education, women are not aware of business, technology and market knowledge and this factor also causes low achievement motivation among women and reduces her ability to bear risks involved in running an enterprise.

In addition to above problems, inadequate infrastructural facilities, shortage of power, social attitude and other socio-economic constraints hold the women back from entering into business.

If we really want to increase women's participation in business we need a drastic change in the condition of women.

Under the seventh five year plan, a special chapter was for women development and the suggestions were:

- (a) to treat women as specific in target groups in all development programs.
- (b) to increase appropriate technologies, equipments and practice for reducing their drudgery and increase their productivity.
- (c) to provide marketing assistance at the state level.
- (d) for increasing women's participation in decision making the new industrial policy of the govt, of India has stressed the need for conducting special entrepreneurship programs for women product and process oriented courses would be started to enable women to start business.

The international agencies like UNCTAD, UNDP and ILO and our national govt, should adopt appropriate measures to increase free flow of trade or products, manufactured by women entrepreneurs and should provide fiscal and expert assistance in the promotion of entrepreneurship among women.

In India, the federation of India, chambers of commerce

and Industry (FICCI) FICCI Ladies organization (FLO) National Alliance of young entrepreneurs (NAYE) and other voluntary agencies assist women entrepreneur under the social education scheme of community development program. Mahila Samagams were organized and women's industrial cooperatives were set up in 1958.

The Nationalized Banks and state financial corporation's advance loan to women entrepreneurs on preferential basis. State industrial Development Corporation and District Industries Centers provide loans, subsidies to women to start business. State level agencies assist women in preparing project reports, buying machines, training and hiring staff.

In rural areas, women are already helping men in agriculture and agro-based industries, what they really need is education and proper training for food preservation, bakery, dairy and handloom areas.

In the end we can say that women possess a futuristic outlook and the capacity to nurture new enterprise, what is needed is proper training, helpful attitude, facilities and assistance. At present women polytechnics are starting traditional skill courses such as embroidery interior decoration, tailoring, knitting etc. Many institutions are now imparting training under various schemes. But majority of women are not benefitted because of family attitude, so mobile training centers part time training facilities can overcome this problem.

References:

1. Arora, Renu and Sood, S. K (2008) "Entrepreneurship and small Business", Fourth Edition, Kalyani Publisher Ludhiana.
2. Dr. Desai, Vasant (2006)"Small Scale Industries and Entrepreneurship, first Edition, Himalaya Publishing House, Mumbai.

3. Dr., Sharma, Sudhir, Singh Balraj and Singhal, Sandeep (2005) "Entrepreneurship Development, Wisdom Publications Delhi.
4. Mishra, S.K. and Puri, V.K.(2007) "Economic Environment of Business, Fourth Edition, Himalaya Publishing House, Mumbai.
5. Mohanty, Sangrom Keshari (2006) "Fundamentals of Entrepreneurship, Prentice Hall of India Private Publication, Delhi.

Journals:

1. Akhoiri, M.M.P. and S.V.S. Sharma(2008) small Entrepreneurship Development in North Eastern India, S.I.T. Institute, Hyderabad.
2. Brimmer, A.F. The setting of Entrepreneurship in India (1955) quarterly Journal of Management.
3. Cantilon, Eechar, In Kuby, Peter, Entrepreneurship and Economic Development.

Rural Development and Its Scope In India

Dr. Sarita Singh*

Rural Development is an integrate part of country's socio-economic development. The goal of rural development is the enrichment of the quality of human life in rural areas accompanied by bridging the rural gap through provision of all amenities.

Concept of Development:

Development may be defined as an activity or process of both qualitative and quantitative change in the existing systems, aiming at immediate improvement of living conditions of the people or increase the potential for betterment of living conditions in the future. Development covers both quantitative and qualitative aspects. Development is a broad concept which also embraces growth. Development covers both quantitative and qualitative aspects. Economic growth is mainly concerned with the quantitative aspect of development. Development has many dimensions and includes quantitative changes in social, political cultural, environmental, aspects etc. Development is a continuous and unending process of attempting to improve all aspects of society.

Development ultimately means development of man and therefore, it is to be judged by what it does to him. In the rural areas, a good number of people for several years lived a life of depending or almost complete slavery. Because of miserable poverty and consequent underdevelopment or social stagnation, people lose faith in themselves and in their potentialities for development and remain without active participation in social, cultural and political life. It is important to bring them out of this insensibility and doubtfulness and to motivate them to think freely about

* Asst. Professor, School of Law, IMS Unison University, Makkawala Greens, Dehradun

progressive ideas. Development should result in reduction of dependency in external resources, increased self-reliance, confidence in their own strength and potentialities for development, spirit of mutual respect and collective effort.

Rural development, therefore, should be viewed as a strategy designed to liberate the rural poor from the age old bondage of degrade life and to awaken and activate the entire rural population in the process of achieving and sharing the high levels of production.

1. Anker¹ gives the following working definition of rural development

"Strategies, policies and programmes for the development of rural areas and the promotion of the activities carried out in such areas (agriculture, forestiy, fishery, rural crafts and industries, the building of the social and economic in frastructure) with ultimate aim of achieving a fuller utilization of available physical and human resources, and thus higher incomes and better living conditions for the rural population as a whole, particularly the rural poor, and effective participation of the latter is the development process."

In this definition some important elements can be identified.

- (i) There should be full utilization of available physical and human resources in rural areas with functional linkage;
- (ii) Development of agriculture and allied activities is necessary;
- (iii) There should be again development of rural industries;
- (iv) It should aim at higher incomes and better living conditions of rural populations; and
- (v) The focus of development should be on rural poor with their effective participation in the development process.

2. In a seminar on approaches to rural development in Asia² discussions were centered around a definition of rural development as a process which leads to a continuous rise in the capacity of the rural people to control their environment accompanied by a wider distribution of benefits resulting from such control” This definitions is composed of three important elements:

- (i) Rural development should be viewed as a process of raising the capacity of rural people to control their environment. Environment does not mean only agricultural or economic development. It includes all aspects of rural life-social, economic, cultural and political.
- (ii) Rural development as a process should continuously raise the capacity of the rural people to influence their total environment enabling them to become initiators; and controllers of change in their environment rather than being merely the passive objects of external manipulation and control; and
- (ii) Rural development must result in a wider distribution of benefits accruing from technical developments and the participation of weaker sections of the rural population in the process of development.

3. Development needed to be conceived as a dynamic process, directed towards transforming the entire society enmarking together its economic, social, political and administrative aspects for an all round, balanced upward change.³

Rural development programme in India in its beginning, was based on the community development approach combing its welfare aims and social economic changes through self-help and self reliant techniques. The philosophy of rural community

development had its origin in the pre independence struggle for political freedom. The committed leadership had a vision of all round development in making village India only self —reliant but also self sufficient. Our first rural development programme had started as a comprehensive self-help movement embracing education, health, agriculture and cottage industrial development providing community facilities in the early fifties, “It was conceived as a peoples programme, mobilizing their energies, resources and labours, for the general social upliftment of all⁴ In this approach national extension (NES) was the means through which delivery system was operated and was supposed to extend all services including finance and technical know-how to common people. This multi-purpose approach was based on the principle of all sided development. The bureaucratic administration hence was extend to the village level in early fifties as such government apparatus in close alignment with the rural elites and new born leaders coming primarily from the middle class families did not deliver the goods to the people. Thereafter various social legislation and economic policy helped the bureaucratic administration to consolidate and strengthen as every new development programme was fitted to the structural set-up the rural mass being alienated gradually, all the social reform what ever radicalism may have in them could hardly touch the people.

OBJECTIVES OF RURAL DEVELOPMENT

The main objectives of rural development are as follows:

1. Increase in agricultural output and productivity.
2. Supply of capital resources.
3. Creation of employment opportunities.
4. Income redistribution and:
5. Raising the living standards of the rural population

I. Raising agricultural productivity:

One of the spectacular advances with regard to increasing agricultural output and productivity has been the introduction of high yielding varieties of seeds and the provisions of special technical and environmental inputs, such as, fertilizers, irrigation, etc. known generally as green revolution it has certainly increased agricultural output and productivity. However, it has income inequalities in rural areas. It is therefore, necessary to keep in mind the unintended consequences of green revolution a revolution that influences only a part of the agricultural production process efficient use of land and water resources. It is well known that, depletion and erosion of soils, the haphazard cutting of woods and forests and the advance of deserts have affected agricultural production badly in many parts of the country.

Similarly, while in many places underground water remains untapped for agricultural purposes, in other places this is being depleted rapidly. It is therefore, necessary to think of appropriate measures that will vary from one place to another for improving efficiency in the use of scarce land and water resources.

II. Capital resources:

It is also well known that agriculture is the last sector to received new capital investments. Thus there is the need to promote capital flow into agricultural production activities.

However, there is enough evidence to suggest that a massive flow of capital in the rural areas has sometimes produced massive social and economic maladjustments and led to unemployment through mechanization.

III. Employment Generation:

While it is quite evident that a programme of rural development must emphasize the creation of employment

opportunities, it is not clear which of the employment generating devices is more fruitful. Such measures as labour intensive agricultural techniques, public works for infrastructure using manpower intensively, rural industrialization etc, have been employed to generate employment. There is also the question of the most appropriate sector where employment generating capacities can be built so that the burden of increasing manpower on agriculture can systematically be reduced. After all most of the employment generating measures, such as public works for constructing roads, etc. must come to an end when enough roads have been constructed. Small scale rural industries and large scale industries have to be well thought out.

IV. Income redistribution:

Experience shows that even of aggregate per capita income increases, distribution of income between regions and social classes become more unequal. In order to prevent the income gap to widen and to reduce income inequality rural development strategy must specifically design measures to benefit the marginal farmer, the landless labourer, and the migrant seasonal works.

V. Raising Living Standards:

Lastly, if the goal of the rural developments is to raise the living standards of the rural population, it must aim at more and higher incomes. Higher incomes do not necessarily and automatically mean a better standard of living for the rural population in terms of material well being, nutrition, education, security, leisure, mental health and social integration. Education for consumption and better living is as important as training and incentives for increasing production. This requires the definition of collective rather than individual goals, of communal rather than personal improvements, of Social rather than Private interest.

SCOPE OF RURAL DEVELOPMENT

The need for rural development in India is apparent. The vertical areas of development and the interlinking as among the different elements or dimensions of development have to be carefully identified and an appropriate strategy has to be evolved.

An attempt is here made to indicate some of the broad areas of rural development which need an integrated approach.

1. Developing Social Consciousness:

Step in rural development is one of the first development of social, the first consciousness of people about the different hindrances to their development, the ways and means of overcoming them, their rights and duties in the community in which they live, progressive aspects of their traditions their own strengths and potentialities to develop themselves. Formal and non-formal education would help to create social consciousness. Apart from it, certain effective short term measures need to be taken to create social consciousness and awareness. The rural people must be educated to think for themselves the ways and means of their own development, thus paving the way for collective decision making and collective action.

2. Collective decision making and collective action:

When people in rural areas face problems and begin to discuss these and take action jointly, the movement towards development has well begin. However, collective decision making depends upon the sympathy towards others, helping attitude, collaborative attitude of sharing the gains of collective work and the ability to face problems collective decision and action, certain norms have to be developed to govern general behavior. Individuals who do not follows norms must be some mechanism of implementing the collective decisions and the norms established

in the groups and the communicates. This calls for dedicated village leadership.

3. Dedicated Village Leadership:

Rural development cannot be achieved by allocation of funds and role of government officials alone. It is a process that should come from within and it cannot be imposed. It is only through the honest and dedicated leaders of the village that villagers can be motivated and proper direction can be given. Rural and community development programmes should not be tools for political parties for propaganda and promotion of their Political interest. There should be a separate cadre of dedicated and honest rural leadership with genuine interest in the development of rural India with democratic ideals.

4. Use of Science:

Use of science and scientific knowledge is essential for rural development in several ways. Through science and scientific reasoning, the literate and ignorant rural poor can be convinced of the causal relationships between events and their knowledge and awareness helps better understanding of social relationship, reduces the hold of prejudices and superstitious beliefs with scientific knowledge, one can improve work skills and reduce the hard labour of human muscles. It is necessary for the scientists to communicate through appropriate media, relevant discoveries in various sciences to people in rural areas.

5. Development of agriculture and allied sector:

Even through rural development is not synonymous with agricultural development, yet agricultural development is critical for meeting the growing demand for food and raw material and for creating more employment opportunities in the rural sector. Therefore, agriculture and allied activities should be developed as more rewarding pursuits with focus on higher productivity. The

average yield per hectare of most of the crops in India is lower than the yield achieved in some states and also in a few areas within a particular state. This calls for:

- a) Acceleration in the land development programmes,
- b) Land reforms, particularly tenancy reform.
- c) Assured availability of water with proper water management.
- d) Better access to institutional credit at reasonable interest rate,
- e) Improvement of agricultural work skills through intensive extension services, backed by intensified area specific agricultural research,
- f) Efficient delivery system, leading to easy supply of modern inputs to all,
- g) Efficient marketing system with assured remunerative price, and
- h) Effective administering of the different development schemes so as to remove structural bottlenecks, if any, and tap the potential for higher productivity among the poor.

6. Provision of subsidiary occupations and incomes:

The small marginal farmers, the landless poor and similar such rural poor without any asset must be helped to have to gainful employment through diary farming and other subsidiary occupations. Dairying may be developed as the main occupation for some, apart from serving as a supplementary occupation.

Development of dairying calls for:

- a) Adequate fodder supply,
- b) Marketing facility with remunerative price for milk and milk products.

- c) More intensive veterinary facilities in rural areas by taking “clinic to the cow” to remote villages and improving the milk yield and genetic make-up of total cows and buffaloes. Through adequate institutional credit, weaker sections must be helped to earn through dairying, poultry, sericulture, etc.

7. Development of Cottage and Village Industries:

The unemployed and underemployed masses in rural areas must be gainfully employed through the development village industries and other non-farm enterprises. Local resources in terms of raw material, capital, etc. must be identified and suitable village industries must be started. These measures should receive immediate attention so that there would be no further processor on land and rural poor are helped to secure gainful employment.

Journals:

1. Anker Desmond, L.W. “Rural Development: Problems and strategies,” International Labour Review, 1973
2. Aurora D. “Drought Prone Areas: Some Development Issues”, New Delhi, Institute of Public Administration, 1977.
3. Dillon, D.S. and B.S. Hangra: “peoples participation in Rural Development programmes” Kurukshetra, Vol. XI, III No. 4 January, 1995. India, 2002.
4. National Human Development Report, 2001 March, 2001, planning commission, Government of India.
5. Praduman Kumar and Mathur V.C., 1996 “Agriculture in Future: Demand Supply Perspective for the Ninth Five year Plan”, Economic and Political weekly, Vol. 31, No. 39, September 28
6. Rao, 5K. Rural Development in India some facets 1979 National Institute of Rural Development , Hyderabad. Report of the Eleventh Finance Commission (2000-2005), Government of

India, July, 2000.

7. Singh Katar (1999b) "Sustainable Development Some Reflections", Presidential Address, Indian Journal of Agricultural Economics, Vol. 54, No. 1, January-March.
8. Singh R.P. Strategies for Rural Prosperity some policy interventions, 1999 Yojana.

Reference:

1. Anker Desmond, L. W. "Rural Development Problems & Strategies', Intemabonal Labour Review, 1973 P. 108.
2. Udai Pareek, Education and Rural Development in Asia, New Delhi, Oxford & IBH Publishing Computer, 1982, PP. 4-5
3. K/iosla, iN. "Development administration: New Dimensions", JJPA KNew Delhi~), Jan-Maui, 1967, P. 18.
4. Haque, W., ivlehta Al, ci a! towards a theory of Rural Development (The Publication copy) U.N. Asia Development Inst itute, December, 1975. P. 22.

Other Sources/Reference:

1. Agenda and processing proceedings of the conference of the CMS on Basic Minimum SERVICES, 4-5 July, 1996, Ministry of Rural Areas and employment.
2. Bhatia, B.M. Poverty Agriculture and Economic Growth, New Delhi, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., 1977.
3. Chandrasekhar, S. India's population : Problems and policy, Meerut, 1970 Meenakshri Prakashan.
4. Haque, W., Mehta N; et aT : towards a theory of Rural Development (pre-publishing copy) U.N. Asian Development Institute, December, 1975.
5. Kavoori J.C. and Singh B.N. History of Rural Development in Modern India, Criterion Pub., New Delhi, 1967.
6. Kumar Ashok, Rural Development in India (Dimensions of its planning), 1956, Inter India Publication Ext., New Delhi.
7. Lakshman T.N., Narayan B.K., Rual Development in India: A

- multi-dimensional analysis. Essays in honour of Prof. K. Venkatagiri Gowda 1984 Himalaya Publishing House.
8. Mishra S.N., Sharma Kushal : Problems and Prospects of Rural Development in India 1983. Uppal Publishing House, New Delhi.
 9. Mishra, R.P. et al., Regional Development Planning in India: A new strategy, New Delhi, Vikas Publications, 1974.
 10. Narayan B.K., Lakshman T.K. Rural Development in India- A multi-Dimensional Analysis. Essays in Honour of Prof. K. Venkatagiri Gowda, Himalaya Publishing House, 1984.
 11. Pandey A.K., Local Level Planning and Rural Development (An Analytical Study) 1990. Mittal Publications, New Delhi.
 12. Rajakutty S.; Acharya Sarathi and Hague T. Indian Rural Development Report 1999. (Ed.).
 13. Rural Development : Theoretical Base and Contradictions in Rural Development in India, 1981 (Ed.) T. Mathew, New Delhi, Agricide Publishing Academy.
 14. Second Five Year Plan : Planning Commission, Government of India.
 15. Shivah M., Mutry, L.S.M., Srivastava, K.B. Jana, AC., Block Administration : An Analysis of salient dimensions, 1979 National Institute of Rural Development, Hyderabad.
 16. Singh Hhoshiar, Rural Development in India Evaluation studies in policies and programmes 1985 Print well publishes, Jaipur.
 17. Singh R.K., Regional Planning & Rural Development, G.B. Pant Social Science Institute, Allahabad thinks liberating 1086, the technical publishing house, 18-C Sarogini Naidu.
 18. Singh, R.L., Rural Development in India problems, strategies and approaches 1985 published by R.L. Singh Foundation, National Geographical Society of India B.H.L.I.
 19. Udai Pareek, Education and Rural Development in India, New Delhi, oxford and IBH Publishing Computers. 1982.

20. Venkata Reddy K. Rural Development in India: Poverty and Development, Himalayan Publishing House, 1988.
21. Venkata Reddy K., Rural Development in India (Poverty and Development), Sri Krishnadevaraya University, Ananapur, Andhra Pradesh 1988 Himalaya Publishing House, Bombay, Nagpur.

“Problem and Constraints of Small Scale Industries in India”

Dr. Rahul K. Misra*

Monika Mishra**

Abstract

Small Scale Industries play vital role in the development of economy mainly in developing countries. In a developing country like India the Small Scale Sector occupies a special place in the industrial structure. Therefore Government of India has given this sector an important place in the framework of Indian economic planning for ideological as well as economic reasons. Population of India is taken into consideration it can be said that this sector has a wide scope in India. As a result, Small Sector has achieved an impressive growth in the number of units and production over the last six decades after independence. Thus, in this research paper an effort has been made to identify the problems relating to the Indian Small Scale Industries and to know the prospects of Indian SSI.

Keyword: - Indian Small Scale Industries, Employment Generation and growth, Lack of machinery and equipment, Share in export.

Introduction:-

A Small Scale Industry is a Project or firm created on a small budget or for small group of people. A Small Scale Industry produces its goods using small produces goods meant for few people.

Small Scale Industries are easy to start and manage given the minimal scale of production. They are set up to cater for the basic needs of the people within their locality. An example of a SSI

* Asst. Professor, Department of Economics, Dayanand Bachhrawan (PG) College, Raebareli

** Asst. Professor, Department of Economics, Dayanand Bachhrawan (PG) College, Raebareli

is a laundry or small kiosk created to cater to the individual needs of the people in the area in which it is located, these businesses require cheap labor that is easily found and their target market is the host community. Such companies also realize a small annual turnover and as a result, pay fewer taxes. The classification of the industry as large or small scale depends on the rate of production and the number of employees. An industry with a low rate of production and fewer employees is a Small Scale Industry.

Importance -

SSI is the backbone of the Indian economy. By considering the employment generation and export generation, the following are some of the importance of SSI:-

Easy to start an SSI which requires very less capital.

SSI contributes 45% of manufacturing output.

It creates nearly 6.5 crore employment.

Employs local people, particularly illiterate and semi-literate and reduces the regional imbalances.

Produces goods for downtrodden people, especially for those below the poverty line.

Problems and Constraints of SSI -

SSI suffers from the want of raw material, important components and equipment.

There is scarcity of technical skill and managerial ability in this sector, the organizers and artisans of the small enterprises lack proper knowledge of the modern technology and the marketing conditions.

This sector is naturally very weak in matter of finance. They are often to depend on indigenious and unscrupulous

money leader who charge very high rate of interest.

Product of these industry in spite of their originality are not often standardized and therefore, are not exposed to advertisement. There is a group of information between the producer and the prospective buyers.

Large scale Industries enjoy the economics of scale and are at the same time favored by the bureaucrats. The clearance of the applications of the smaller units often takes unduly long time.

Role of Government -

The Small Scale Industry sector output contributes almost 40% of the gross Industrial value added 45% of the total export from India and is the second largest employer of human resources after agriculture. The development of SSI has therefore been assigned an important role in India's national plans.

In order to protect support and promote small enterprises as also to help them become self-supporting, a number of protective and promotional measures have been undertaken by the government.

The promotional measures cover -

Industrial extension services.

Institutional support in respect of credit facilities.

Provision of developed sites of construction of sheds.

Provision of trading facilities.

Supply of machinery on hire-purchase terms.

Assistance for domestic marketing as well as exports.

Special incentives for setting up enterprises in backward areas etc.

Technical consultancy and financial assistance for

technological up gradation.

While most of the institutional support service and some incentive are provided by the central govt. others are offered by the state govt. in varying degrees to attract investments and promote small industries with a view to enhance industries production and to generate employment in their respective states.

Conclusion:-

The promotion of SSI is essential in developing economies like India to achieve equitable distribution of income and wealth economics self-dependence and entrepreneurial development, to empower the SSI sector to take its rightful place as the growth engine of Indian economy. It is necessary to support the MSME, educate and empower them to make optimum utilization of the resources, both human and economics, to achieve success, the SSIs need to be educated and informed of the latest developments taking place globally and helped to acquire skills necessary to keep pace with the global developments.

Reorientation in the attitude of the people of the state in general, the educated youths and capitalist class in particular is the urgent requirement for paving the way of industrialization in the state. It is an accepted fact that people with right altitude, total commitment and right conception can change the existing system. People of the state must give up the lure to earn easy money and sets their mind to take risk. They should learn from th past. We cannot deny that with “obsession over industrial liberalization” the crucial mother of employment creation has taken a backseat.

Reference –

1. Mishra & Puri, Indian Economy
2. Dutt sundaram, Indian Economy
3. Kulshershtha, Industrial Economics

4. S.W. Bhattacharya, Development of SSI, New Delhi.
5. Ashok kr. Arora, Financing of SSI, Deep & Deep Publishers, New Delhi 2002.
6. Indrajeet Singh and N.S. Gupta, Financing of Small Scale Industry, S.chand & co. Ltd. New Delhi 2005.
7. A.N. Aggrawal, Indian Economy Problems of Development and Planning.
8. Staley & Marse, Modern Small Scale Industry in developing countries, New York, Mc Crew Hill.
9. A.R. Bhatta, Small Scale Industry and Challenges Commerce 10th august 1074.
10. Govt. of India, Industrial Policy Resolution – 1990.
11. Govt. of India, Industrial Policy Resolution – 1991.
12. SIDBI Report, Small Scale Industries Sector - 1999.
13. UPSIC Report, Pragati Samiksha 1999 – 2000.
14. UPSIC Report, Pragati Samiksha 2001 – 2002.
15. Ministry of SSI (2002): “Small Scale Industries in India – An Engine of Growth; New Delhi.
16. Ministry of Finance & Economic Economic Survey (1999-2003) Division, Govt. of India.
17. M. H. Balasuramanyam “India's Small Scale Industry policy in the 90's”, Waring Publication, The Indian Economic Journal vol. 47 (2000).
18. www.ssibio.com
19. www.sidbi.com
20. www.msme.gov.in

Semester System in Higher Education : A Choice or Need?

Dr. Mamta Dogra*

ABSTRACT

In semester system, each academic year is divided into two equal parts of about six months each, each part being called a semester. Semester examinations are conducted after the end of each semester. Universities play a vital and critical role in the development and evolution of societies. These universities generate new ideas, encourage innovation, educate young minds and create awareness and dynamic citizens in the country. *The University Grants Commission (UGC)* set up a committee for university reforms which emphasized the importance of interdisciplinary, a broader background for undergraduate education, a uniform semester and credit system, a science-technology interface, the importance of enhancing skills in mathematics and languages and changes in the regulatory regimes. Hence, Delhi University introduced the “**Semester System**” to change the structure which will bring quantum leap in the teaching, research and innovation. Considering the role of Semester System in Higher Education, the present study was undertaken.

Purpose of the study: The main purpose of the study was to focus the intrinsic worth of semester system in comparison to annual examination system.

Conclusions: In the concluding remarks, it can be stressed that:

- Semester system in conformity with the global practices and standards and being the member of this globalized world, every student has to cope him or herself with the new trends and demands.
- Experimentation with the introduction of semester system in India might help growing the quality of the youth's studies. Since universities like JNU, Jamiya Milia Islamia and Delhi University and so on; are successfully implementing this system; all other universities should also try to do so to compete in the globalized world.
- Finally, for a nation like India, semester system cannot be a choice as it is a need for India.

* Assistant Professor, Physical Education, Nari Shiksha Niketan PG College, Lucknow

INTRODUCTION

In semester system, each academic year is divided into two equal parts of about six months each, each part being called a semester. Semester examinations are conducted after the end of each semester. Universities play a vital and critical role in the development and evolution of societies. These universities generate new ideas, encourage innovation, educate young minds and create awareness and dynamic citizens in the country. *The University Grants Commission (UGC)* set up a committee for university reforms which emphasized the importance of interdisciplinary, a broader background for undergraduate education, a uniform semester and credit system, a science-technology interface, the importance of enhancing skills in mathematics and languages and changes in the regulatory regimes. Hence, Delhi University introduced the “**Semester System**” to change the structure which will bring quantum leap in the teaching, research and innovation.

DIFFICULTIES IN ANNUAL EXAMINATION SYSTEM:

In our traditional system, the examinations are conducted after one year. In annual examination system, numerous difficulties are faced not only by the students but also by teachers, such as:

- **Too large subject matter**

In annual examination system, there is very vast syllabus

- **Slower coverage - Greater stress**

Both teachers and students feel relaxed at the beginning of the academic session, because examination appears to be far away. This slackness results in slower coverage of the courses and consequently, greater stress and straining the students as the examination draws nearer.

- **Rote learning and cramming**

Courses are covered hurriedly within a few weeks just before the examination, which result in poor performance of the students and encourage rote learning and cramming.

- **Hampers good instructional approaches**

Many good instructional approaches such as continuous evaluation, tutorials, projects, assignments, group discussions and so on are not arranged due to shortage of time and entire teaching-learning process becomes written examination oriented.

CHANGES/BENEFITS IN SEMESTER SYSTEM

Many developed countries of the world have overcome these difficulties by implementing semester system. Under this system, following changes are brought about.

- **Division of course**

It breaks down the subject-matter of each course/paper into two or more meaningful, self-contained, well-organized and internally homogeneous parts.

- **Regularity and comprehensiveness**

It carries out the teaching work more regularly and comprehensively approaches mutual co-operation and new instructional strategies.

- **Broad-based syllabus**

It makes the syllabus more broad-based with the inclusion of main and subsidiary subjects including core courses and electives.

- **Variation in subject-matter**

It provides for greater variety of subject areas suitable to the intellectual motivational and occupational requirements of the learners.

- **Pleasant and joyful activity**

It reduces unnecessary stress and strain before and during teaching and examination period and makes learning a purposeful, pleasant and joyful activity.

- **Effective teaching-learning process**

It makes teaching-learning process more broad-based by including class discussions, tutorials, assignments, library work and educational excursions as integral components.

- **Improvement in efficiency**

It introduces a system of formative evaluation in order to receive continuous feedback for improvement of learning experiences so as to make them more effective and efficient.

- **Deeper interaction between teachers and students**

Semester system also enhances the interaction between students and teachers, which we know that it is essential for learning and will help both.

- **More in-depth study and understanding**

The examination related study load of the students shall be halved since they would be required to prepare half of the content. This would enable a more in-depth study and understanding of their concerned subjects.

- **Introduces seriousness and study-culture in colleges and universities**

Semester system does not allow any kind of slackness on the part of teachers and students as there is no extra time to waste. This introduces seriousness and study-culture in colleges and universities.

NEED OF SEMESTER SYSTEM IN HIGHER EDUCATION IN INDIA

There has earlier been successful youths from annual

system too. Experimentation with something new is a habit of human beings to beget something better in competing with the other markets around the world -

- The rationale for adopting semester system rather than remaining with the annual system is to improve learning process so that students will be benefited maximally in terms of the acquisition of relevant knowledge, skills and attitudes.
- The move from annual examination system to semester system is aimed at bringing higher education in India in conformity with the best academic practices and standards being followed globally.
- Semester system is the current manifestation of a market-driven 'vision' for Indian Higher Education. (The arbitrary and authoritarian imposition of the semester system in the higher education is nothing but the current manifestation of a market-driven 'vision' for Indian higher education.)

The university committee wants to improve the learning processes to benefit the students so they have introduced semester system rather than remaining with the annual system to enhance value to the students. This semester system is **beneficial** for number of reasons. There may be various advantages and disadvantages of semester system in education. Let's discuss it in detail:

- It will provide an opportunity to students for continuous learning and assessment/feedback and a better paced understanding of the subject. There will more focused class interaction because of continuous engagement between students and teachers. This will provide regular study habits among students. The main advantage is that the performance would not be judged at the end of one year rather conducting

examinations twice a year will help in regularly evaluating the student progress. The examination study load of the students shall be halved since they would be required to prepare half of the content as they are currently required to prepare for the final examination. As a result it would enable a more in-depth study and understanding of their concerned subjects.

- Interdisciplinary would play an important role in the way subjects are being conceptualized and knowledge integrated across diverse disciplines. Semester system would facilitate the possibility of undergraduate students imbibing relevant knowledge and skills that are not contained within the disciplinary boundaries of their primary subject areas. A semester system allows greater freedom and scope for designing and delivering a variety of courses that the students can pick flexibly to enhance the quality of their learning.
- The current situation of University of Delhi is inflexible in terms of accumulation of credits which would allow movement of students across universities in India and abroad. Students from other countries who come on short term 'Study Abroad' programs to Delhi University are awarded credits by their universities for studying but the same is not given by our university. Therefore, introducing a semester system will allow greater exposure to those of the students who get the opportunity to study elsewhere.
- Adopting a semester system at the undergraduate level will lead to a harmonization with the changes made at the postgraduate level as well as with undergraduate courses that are already being run in a semester system.

Some students have accepted the proposal of introducing the semester system and have a number of reasons in support of it. While some feel that the semester system will lighten the

examination load since they would not be confronted with vast syllabus as in the annual examinations. In comparison with the annual system, students perceived the semester system to be favorable and continuous learning and evaluation with a better focus on the program they have opted for.

Some students and teachers are not completely in favor of the new system and feel semester system will create many unwanted challenges for the students. Some felt that the success of the semester system being closely related to adequate time available while others felt that it would overburden them. Some students were under the feeling that the system of examination would become an internal one which would lead to a lack of uniform standards. Anxiety about the less time for extracurricular activities was also spoken.

Some of the **drawbacks** of the semester system are as follows:

Inadequacy of Time:

The classes under the semester system starts on July and the admission keeps on going till August, which adversely affect the proper starting of the classes. When there is no clarity in the system it have been decided that the first semester exam would be held in December. A vacation of 20-25 days before the exams implies that neither the teachers have enough time to complete the course nor the students have adequate time to prepare well for the first semester exam. While teachers in Delhi University reveal that in annual examination system, teachers have the right amount of time to complete the course and students have enough time to prepare well for the exam.

Increasing Work Load:

The Delhi University has many departments and colleges. The declaration of result in every 6 months would double the work load of departments since semester exam implies more revaluation

and on right time the declaration of results.

Comparison between semester and annual systems is very often done. Both the systems have its merits and demerits. Annual system is the traditional system. Annual system covers more syllabuses at a stretch and compels the student to remember all this till the end of the year. Sometimes, two or more topics will be included in the same paper (very often, a paper will have to be set by two examiners under such situations), when specializations are there. Otherwise, certain topics will be omitted and the syllabus diluted. Since at the end of the year only the public examinations are conducted, University gets enough time to prepare question papers and value answer papers. Number of examiners and examinations also can be reduced, which become more economical for Universities. Results can be announced in time and the schedule can be kept.

In semester system, the students get more advantage; since examinations are held within months (what is studied will remain afresh in their brain). The syllabus load also will be less. Different topics need not be combined in the same paper. Students get more chances to improve also. Since examinations come within a few months student unrest also will be less in a semester system. There were many challenges to be faced by the under graduate colleges in preparing the students for the semester system. The semester system is a very proactive system as it engages both the faculty and the students throughout the year in academic activity. While, in the annual system once the student enters the college he feels free and thinks about studying only during the exam time. Semester system not only involves students more throughout the year but also reduces examination burden. The semester system is the need of hour and a very effective one.

CONCLUSIONS: In the concluding remarks, it can be stressed

that:

Semester system in conformity with the global practices and standards and being the member of this globalized world, every student has to cope him or herself with the new trends and demands.

Experimentation with the introduction of semester system in India might help growing the quality of the youth's studies. Since universities like JNU, Jamiya Milia Islamia and Delhi University and so on; are successfully implementing this system; all other universities should also try to do so to compete in the globalized world.

Finally, for a nation like India, semester system cannot be a choice as it is a need for India.

REFERENCES

1. www.globaljournals.com
2. www.deccanherald.com
3. Mumtaz Mazumdar , 2010, Introduction of Semester System in Indian Colleges, Munich, GRIN Verlag,
<http://www.grin.com/en/e-book/177187/introduction-of-semester-system-in-indian-colleges>
4. www.ugc.ac.in

Strategy of Internship On Teacher Preparation

Priya Johari*

Introduction: Internship is an integral part of professional preparation of a teacher in making preceded by successful observation , participation and student teaching or equivalent clinical experience in a school environment , and is planned and co- ordinate by the teachers education institution in co-operation with one or more school systems. Intern is a prospective teacher who assumes in internship position in which he is given a teaching position under the guidance. Internship is service is service in preparation for a position usually under the supervision of a university or college supervision of a university or college supervisor and a practicing school teacher more experienced in the field. The interns are given opportunity to participate in many phases of the work of the school system.

Background: As a vehicle for teacher education and certificate, the internship can be traced to the early years of the present century, although many persons are inclined to consider the internship in teacher education as a new departure in teacher preparation. Milestone in the development of the internship concept are the brown university programme which began in 1909, the cooperative programme of the University of Cincinnati and Cincinnati public schools in 1919, the expansion of internship programmes during depression years of the 1930,s and the importance provided by private foundations in the late 1950,s and throughout the 1960s. In spite of this fairly long historical background however; the internship has yet to become a significant factor in the mass production of teachers.

* M.A. Education, University of Allahabad

In Indian context: Internship in teaching as visualized in the plan and programmed (NCERT 1963) for which an alternative terminology “school experience programme” (SEP) has also been used by secondary teacher education curriculum (NCERT, 1991) is to be designed to provide opportunities to develop high level of competence in all aspects of the teachers work. The plan and programme mentions, “The term internship” refers to an arrangement under which a prospective teacher can acquire first hand experience as a teacher in situation closely resembling those in which he would be working upon entering the profession. The intern ship programme is to be so designed as to provide each student with a comprehensive experience and will be implemented in realistic teaching learning situation in the cooperating schools. **Page and Thomas** (1997) in the international dictionary of education consider internship as “probationary period served by newly qualified teachers. According to these authors the holder of an internship programme is known as an intern. Internship may be in lieu of student teaching, yet the dictionary equivalent is probationary year.”

Characteristic of internship programme: The internship differs from conventional student – teaching in many ways, yet there are similarities: the prospective teacher becomes involved in teaching, supervision is provided by both the college and the schools, and self evolution and clinical analysis is an internal part of the process. The college supervisor in internship programmes frequently assumes more of a consultant role than is found in student – teaching. Other than this role is comparable to that in student- teaching programmes. After carefully analyzing fourteen representative internship programmes, **Dorothy Blackmore** (1968) reported the following generalizations concerning the characteristics of the programmes studied.

- Theory courses are usually given concurrently with, and in connection with, pre- internship laboratory experiences of a practical nature. These courses and the related field experience are ordinarily planned, coordinated and taught by people involved in the practical phase of the internship laboratory experiences in preparation for internship teaching.
- Both theoretical course work and problem – centered seminars generally accompany the internship in teaching during its entirety.
- Internship generally seems to be conceived as a programme requiring the interaction of many different individuals in varying professional roles rather than as a function of education department alone. Commonly involved are both theoreticians and practitioners at a number of levels.
- Finally, coordination and cooperation among all the agencies involved are felt to be necessary to bring about the most effective integration of theory and practice in internship.
- Internship programmers are also characterized by identifiable stages through which the interns pass as they approach the full realization of their professional goal

Advantages of internship programmes: Those who work in internship programmes emphasize that their trainees appear to be better prepared than those produced by more conventional teachers education programmes. There is an added emphasis on clinical experiences in internship. Interns appear to be as well prepared as those of conventional programmes. Additionally there is considerable evidence that those who enter the teaching profession through the internship route remain in teaching as a career for a longer period of time than those who enter through conventional channels. this is hardly surprising in view of the fact that those who go through internship usually have a greater

investment in their professional preparation and make the decision to enter teaching, in many cases, after graduation from college at a time when they are more certain of their goals and are more sure of themselves in the selection of teaching as career. (Bennie, 1972)

• **Organizing Internship:** Because of the importance of internship in the total programme of the teacher- training course, as well as the complexities of internship , organizing internship calls for a great care and deftness on the part of the organizers of internship . Organization of internship centers, arranging pre-internship conference, conduct of internship and evolution. Each stages is crucial for success of internship. We now turn to examine these stages on some point

- Selection of internship centers
- Pre internship meeting
- Conferences of cooperating heads\principals and teachers
- Pre – internship orientation\readiness activities.

Internship activities: The internship activities should include:

- Placement of intern in the cooperating schools keeping in views the sufficient facilities and classes available in various subjects to be taught by interns.
- Fixing time table for the interns and allotment of units to be taught by interns.
- Preparation of lesson plan by interns and getting them corrected by subjects teachers and teachers educators.
- Participation in group discussion by the interns, cooperating teachers and college super visor.
- Observation of lessons of seasoned teachers by interns.
- Preparation of appropriate teaching aids by interns.
- Designing the unit tests, administering them, evaluating and

providing feedback to students by interns.

- Preparation of progress reports.
- Interaction with parents.
- Organizing subject quiz and subject exhibitions.
- Organization of co- curricular activities in the school under the supervision of school teachers and supervisor.
- Participation in working with community programmes to know the community problem and try to help in solving these problems.
- Experience in library, laboratory and record maintenance.
- Assessment of the use of library by the students.
- Study of the school environment and its socio- cultural fabric.
- Visit to various places of educational significance.

Post – internship activities:

- Post internship meeting of interns and supervisors.
- Evolutions of assignments.
- Exhibitions of teaching aids prepared by interns.
- Post internship seminars and discussions.
- Inviting feedback from school authorities.
- Preparation of brief report by each intern about experience during internship along with the suggestions for improvement.
- Submission of the reports of peer group supervision.
- Suggestions by interns, schools teachers and supervisors for strengthening internship programme.

Expectations from interns during in the internship:

- To teach about 20 lessons in each of their two subjects in a planned manner, preparing units plans, whenever required and lesson plans each day.

- To observe ten lesson of co- trainees on the schedule provided by the college.
- To assess their own teaching at least once through unit –test in either subject after a unit is completed.
- To use a teaching aids in their lesson and construct at least one.
- To conduct school activity.
- To complete other assignments required by the college department.
- To participate fully in the routine school work including exams, co- curriculum programmes remedial classes or parents teacher meeting.

Evaluations in internship: There should be consisted and continuous evaluations of the progress in understanding and developing competency in teaching. Evolution cannot take place without criticism. The student teacher must be willing to accept suggestions and criticism. The competent supervising teacher or supervisor should offer criticism constructively with suggestions for improvement and with full understanding of the involvement of the student teacher. Again there should be mutual acceptance of evaluative suggestions. While evaluating student- teachers activities the following points should be kept in mind:

- Evaluation should be comprehensive. Even minor points must be observed and suggestions for their improvement must be provided. weight age to each component of internship such as lesson plan, use of teaching aids, interaction with students, performance assessment of students, and feedback provided by the intern should be pre-decided and used in evolutions
- Peer evolutions also are included in the final grading.
- Well defined and reliable rating scales be used for evolutions.

- Evolution should be formative as well as summative. Formative evaluation may be done through regular discussion where as summative through assessment of project reports.
- Effect tools be developed and used for the assessment of core-training, practice teaching, criticism lesson, final lesson, and field assessment etc.
- Marks should be distributed to all the activities of pre-internship, practice teaching, (regular teaching) , criticism lessons (in both the teaching subjects), final lessons ,assignments in subjects and 5% marks may be assigned to self evaluations.
- The final grades should be awarded on the completion of internship. All of the evaluators should be taken for decision finalization of results and grading.

Conclusion:

Internships are known for giving students the opportunity to apply their knowledge in real world environments. At the same time, they will also develop skills which will help them perform better at their jobs. By using internships, students are provided with experience that will make them stronger. In addition to this, their work ethic will increase, and they will be confident in their abilities. Internships will also allow students to learn about time management, discipline, and effective communication.

References:

- Srivastava ,G.N Praskash (2000) Management of Teacher Education a Hand Book, New Delhi ,Concept Publishing Company,
- Srivastava ,G.N Praskash (2000), Perspective in Teacher Education, New Delhi Concept Publishing Company.
- Mohan, Radha (2011) Teacher Education, New Delhi PHI Learning Private Limited.

- N.C.E.R.T (1963) Plan and Programme. N.C.E.R.T (New Delhi).
- N.C.E.R.T (1963) Internship in Teaching. N.C.E.R.T (New Delhi).
- www.google.com
- www.wikipedia.com

“Imaging India in Upamanyu Chatterjee Novel English August”

Dr. Shivani Verma*

In the 1980s Indian writers made the most valuable place in the field of the novels. Indian novelist are popularized and honoured day by day. During this period Salman Rusdie's Midnight Children and Vikram Seth's The Golden Gate are the most popular fictions in Indian writing. We also see through the fiction that it has been powered to face challenges and change in the society very lightly. It shows only reality in the several directions. Which depicts the purpose of Indian fiction to define the problems of society with their solutions as per the situation. With this infer the Indian novels plot construction and characterizations are pre-historical and presumable. Therefore the three big fictional constructor who gave new pathetic way to the Indian Novel are Mulk Raj Anand Untouchable, Raja Rao Kanthapura and R.K Narayan The Painter of Signs. Then in these novels we came across with didacticism and allegorical fiction and this proves that they arise great revolution, who presents the real picture of that time. The development of Indian fiction seems to be of new talents and trends with a definite pattern. Afterwards gradually the Indian novelist shifted to the public point as well as to the private of view. Fictional writers certainly provided according to the problems and crises of life as well as definitely they tried to catch the human values in the society. “Amitav Ghosh, Rohinton Mistery, Shobha De and Khuswant Singh” these entire novelists gave significant contribution in the Indian English Literature.

Surrounding these novelists we get a glimpse of outstanding contribution of another personality that is Upamanyu

* Assistant professor Maa Gayatri Mahavidyalay Khamhaul Kheri.

Chatterjee in the Indian fiction through his novels- English August.

The Last Burden

The Mammaries of the Welfare State

Weight Loss.

Upamanyu Chatterjee is one of those Indians novelists in the post-Independence era who have comprehended their Indian experience from a philosophical point of view. He has engaged himself in creating the narratives that reveal the existential crisis of human beings in these times of uncertainties, anxiety and unknown fears. In all his fictional works Upamanyu narrates the stories of those human beings who do not share any traditional assumptions of heroes or heroines. His characters are indeed the anti-heroes who are unable to handle the big meaninglessness that life creates for us as we grow and live life in this senseless world.

His novels are affectionate for new themes and new modes. But I will discuss his first Novel English August which took an assertive place in India. It was published in 1988, which is an Indian story based on the new generation education.

Agastya is the main protagonist of his novel, who is a young civil servant joining the Indian administrative service as a trainer in a small town Madna- which author Chatterjee himself joined at the same age in 1983? In the opening novel when a deputy Engineer 'Laxman Shankar' the first person whom he meets on his way to Madna and ask to Agastya what kind of name is Agastya? After that when 'Srivastava' questions as a same that what kind of name is Agastya Bhai? He was so fed up with such questions then he said panically Agastya is a Sanskrit word although he feels a strange sense of dislocation, alienation and frustration as well as he thinks simply that wasting his time in Madna, then he met with his friend Dhruvo and held a great conversation with each other.

Dhrubo was a Marijuana smoker as well as asked to Agastya “what you do for sex and marijuana in Madna? And said; I think that you are going to get hazaar fucked in Madna and Agastya consider simply that he is 'wasting time here'. Therefore the mixture of modern and traditional, urban and rural all speech are reflected to the characters in the novel. Whatever “Agastya existed that 'Reading was impossible' but Marcus Aureliues meditations turned out his thought.

Agastya is a youth and to find meaning and directions of our life, so meditations show his perceptions view. Agastya does not want to work in Madna, as Srivastava, kumar and others do but he wants to increase the Indian bureaucracy. Therefore the character of Tamse as an Executive Engineer, who was posted in Madna sometime ago, is very enthusiastic and untalented he learnt that loneliness was not enough.

Govind Sathe is journalist or a cartoonist. Agastya want to go from the Madna. Then sathe tells him own story 'his father migrated from Bombay for Madna to his father's business as a forest constructor.' When Agastya puts the question what are you doing in Madna? He replies I like this place. There are also other prominent stories which are Laxman Shankar's sick story he wanted koltanga because he was homesick and unlike to other Engineers because he mints money from everybody. Shankar was powerless and he could be suspended at any moment. He had to pay much to make a comic figure. Geeta appreciates the novel for the accumulation of thought and produces a powerless image of Madna. Then at last Agastya reads Neera's letter which expresses her feelings and focused against customs and conversations.

This is very funny novel but a writer kindness one as well that this book displays a worldwide seen in the modern Indian writing revealing with a detailed knowledge of the particular

activity that can also be expressed with personal experience. In the novel all characters are surrounded to each other. There are number of a part that commits him to do anything. He did not consider himself too seriously for example – Marijuana, Masturbation, Day Dreams and Marcus Aurelius – although Tonic a cousin of Agastya , is an idiot, who had with great tactlessness refused to publish a book of pultakaku's articles on something called “ The Indian Renewal's as well as Ghosal and Multani provided description of Agastya's background as the civil services examination, the nature of his job, his reactions about to Madna his marriage plans as well his other interests. According to the characters view that English August is absurdist play which explores the cause of human suffering. A more potent cause of suffering is man's uncertainly about his origin and destination. Human life is therefore senseless and meaningless but his expectation are so high which we do in the hide freedom. We see that the human existentialism view that death which is real and a part of life but human far away that condition. We do not want to realize that life and death both is complex to each other but when we analyze the life of Agastya we find that life is full of mortal and immortal with a pathetic consideration. The novel can be read at two levels- firstly on the surface level, the book is a commentary on the administrative service of India and secondly the deeper level, it is frank discussion of the predicament and level also the novel describes sometime pathetic, sometime humorous even ridiculous. Agastya is basically unwilling and unable to commit himself fully to do anything but Chatterjee presents this act very sympathetically. Although Chatterjee's tone fits well with his laid back as a protagonist reality around him is decidedly odd. In another word we can say that Chatterjee novels are very puzzling and surprisingly touching story and always well presented to the whole episodes. The world of bureaucrats and business administrative to touch each other and

both invite satirical treatment as far as the book finally leaves us wandering motivated. Thus English August wears the crown of reality because the novel is so natural and definitely true so it is an Indian story.

Although when the novel is written the impact is not available to change the society for example – T.V and Cables then Chatterjee does not waste the opportunity to develop human state of mind. Forever he seemed as extreme points of an unreal existence as pathetically. Agastya defined India is too exact definition with our own experience. There are humorous smaller and larger episodes and encounters. We see in the novel functions of bureaucracy. There are several characters which makes prominent figures in the novel. The narrativeness is full of satire and humour. The writing is not always consistent but the lapses are relatively good indeed. English August has worn remarkably well. Agastya's story is convincing entertaining, moving and timeless as classic. Chatterjee's all description and characters are spiritual restlessness. Therefore we have to see properly all around an Indian life. English August is an Indian story and literally presented the post – modernistic, Meta fictional and literally traditions. The parody and self-parody mode intended textual structure of the novel. While the new generation main stream Agastya, Dhruvo, Reenu, Neera and Bhatia on the contrary, we find Chimpanti, Jompanaaa and Goparak create un conscious idea of mainstream. Though we identify that India bureaucracy has also the description of nature as the Chamble Valley, there were a small town. Madna and Delhi seemed two extreme points of an unreal existence. There are many people as Paal and Deputy Secretary Industries and Englishman followed Agastya into the dark silent room, in Srivastava Saal's house this apparent all as numerous contradictory.

The novel describes a journey English August and Wating for Godot both are absurdist and narrative which explores the cause of human suffering. UpmanyuChatterjee is comparatively a new English novelist who takes of the dynamics of urban living. They are praised between the hope of salvation and the fear of damnation. A more potent cause of suffering is man's uncertainly about his origin and destination. The symbolism of the play is certainly too complex to admit of a single or simple interpretation. There is also physical suffering which is caused by man's cruelty to man and mystification of the identity. Human life is therefore senseless. Agastya's feeling is full of emancipation able which related to his career. He wants a progressive change in our life. Then day by day his thinking ability may be sophisticated. So his tendency to admire his position very energetically and ethically. The articulation of Agastya character is very regenerating and always convinced him to delicate our post in the right way as he is able to do for the primary schools and primary health care center who originated there camps as well as he wondered what it would be like for a hetro sexual to be doctor at P.H.C. These description are show the admirable qualities of Agastya which popularize the novel. Basically Chatterjee wanted to show various colors by his characters and he became successful. Therefore he discovered novel by the phrase also as-

“Moved from many mouths to many ears”

Perhaps life was based on a leisurely affair in Madna. They also come back from the A passage to India, Amadeus , The Jewel in the crown lots of other movies for show his Indian perception view in the novel and Agastya defined India he said -

“India is too exact definition. He notifies that we are servant of the people and realize that effective administration really means meeting the people although



this is India and we lived Independent country.”

Thus we identify that the human conditions are always in distressful state.

Primary Sources-

Chatterjee, Upamanyu. *English August*. Faber and Faber. Penguin Books. New Delhi. 1988.

Secondary Sources-

- Archard, David. *Maxims and Existentialism*. Black Staff Press Limited. Northern Ireland. 1980. Print.
- Barnes, Hazel E. *Existentialist Ethics*. New York. University Chicago Press, U.C.P. 1967. Print.
- Beauvoir, De Simone. *The Second Sex*. Knopf Doubleday Pub. Group. 1949. Print.
- *Existentialism*. editor by Wikipedia's philosophy, Pedia Press. 155. Print.
- Bhattacharya, Sailesh Ranjan. 'An Enquiry into the fundamentals of Existentialism', Firma Kim Private Limited, Nietzsche, Friedrich. *The Will to Power*. Edited by Walter Kaufmann. Edinburgh and London. 387, T.N Foulis: The Macmillan Company: 1901. Print.
- Beyond good and evil published .penguin classics. 1886. (NP).
- Sartre, Jean Paul. *Being and Nothingness: An Essay on Phenomenological ontology*: Methuen & Co. Ltd: London ix (Introduction by Mary Warnock): 1958. Print.
- “*Existentialism is Humanism*” .29:121-22. World Publishing Company: 1956. Print.

Web Sources-

1. Chronology of Kierkegaard, Jean Paul Sartre: Web.
2. English August: A Director's Introduction.

3. Existentialism Today: Paul Tillich: Web.
4. Kant Immanuel: Critique of pure reason: enWikipedia.org/
ontologicalArgument).
5. Irrational man – a study in existential philosophy from
Wikipedia. The Free Encyclopedia

“जे० कृष्णमूर्ति की शिक्षा नीति की प्रासंगिकता का अध्ययन”

आरती गौतम*

प्रस्तावना :-

व्यक्तियों की अभिवृत्तियों का परिष्कार करना दर्शन का कार्य है। हम अपने दैनिक कार्य में अपने दृष्टिकोण से प्रेरणा लेते हैं। ये दृष्टिकोण अनेक प्रकार के होते हैं। इसलिये ये कहा जाता है कि महान पुरुषों के अपने-अपने दार्शनिक दृष्टिकोण होते हैं। जे कृष्णमूर्ति जी का शिक्षा के प्रति अपना अनोखा, नवीन तथा व्यापक दर्शन रहा है, जिसका प्रस्तुतीकरण प्रकृतिवाद, विचारवाद, प्रयोजनवाद तथा यर्थाथजनवाद का सन्दर्भ लेते हुए किया जायेगा। इस प्रकार से अपनी शैक्षिक विचारधारा की विश्वसनीयता स्पष्ट हो सकेगी।

पाश्चात्य शिक्षा-शास्त्रियों ने शिक्षा के व्यापक स्वरूप को अपनी सोच, दृष्टिकोण तथा आन्तरिक बल के आधार पर प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार आत्मान एवं विराट पुरुष का ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा है। महात्मा बुद्ध के संदेश में व्यक्ति को सत्यान्वेषण करना चाहिए और नैतिक गुणों को व्यवहार में उतारना चाहिए। “महात्मा गांधी” के अनुसार शिक्षा से मेरा तात्पर्य इस प्रक्रिया से है जो बालक एवं मनुष्य के शरीर एवं आत्मा के सर्वोत्कृष्ट रूपों को प्रस्फुटित कर दे। “रवीन्द्रनाथ टैगोर” ने शिक्षा को जीवन और सम्पूर्ण सृष्टि में तादात्म्य स्थापित करना बताया है। राधाकृष्णन के अनुसार-शिक्षा सूचना प्रदान करने एवं कौशल का प्रशिक्षण देने तक सीमित नहीं है। इसे शिक्षित व्यक्ति को मूल्यों का विचार भी प्रदान करना है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी व्यक्ति भी नागरिक हैं, अतः जिस समुदाय

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, (शिक्षाशास्त्र विद्यापीठ विभाग), बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर विश्व विद्यालय, लखनऊ

में वे रहते हैं उस समुदाय के प्रति उनका भी सामाजिक उत्तरदायित्व है। कवियत्री सरोजनी नायडू के विचार से शिक्षा व्यक्ति में आत्म प्रकाशन की अधिकार पूर्ण शैली को खोजने में सच्ची लगन और मौलिकता का विकास करना है। ओशो के अनुसार शिक्षा मानव आत्मा में जो कुछ निहित है उसे अभिव्यक्त करने का माध्यम और उपाय है। शिक्षा तब संप्राण होगी, जब वह अपनी आजीविका को ही नहीं वरन् जीवन जीना भी सिखायेगी। मैं सब कुछ जान लूँ, लेकिन स्वयं की ही सत्ता, से अपरिचित रह जाऊँ तो वह जानना वस्तुतः जानना नहीं है ऐसे ज्ञान का क्या मूल्य जिसके केन्द्र पर “स्वान” न हो? यदि स्वयं के भीतर अंधेरा हो तो सारे जगत में भरे प्रकाश का हमारे लिए क्या उपयोग है। ज्ञान का प्रथम चरण “स्वज्ञान” से ही चाहिए, क्योंकि ज्ञान का अंतिम लक्ष्य वहीं है। “

जीवन परिचय —

ग्यारह मई अट्टारह सौ पञ्चानवे (1895) को भारत के दक्षिण क्षेत्र में धार्मिक प्रदेश “आन्ध्र प्रदेश” के चित्तूर जिले में एक गाँव “मदनपल्ली” में आपका जन्म हुआ था। आपके माता पिता “जिद्दू संजीवम्मा” एवं “जिद्दू नारायणीय” थे। आप लोग बहुत ही धार्मिक स्वभाव के और श्रीकृष्ण के भक्त थे। इसके साथ ही साथ आप लोग पुराने “थियोसोफिस्ट” भी थे। आपका जन्म भगवान श्रीकृष्ण के प्रति भक्तिभाव और धार्मिक-वृत्ति के कारण माना जाता है। सम्भवतः आपका जन्म श्रीकृष्ण जी के जन्म लेने की परिस्थिति में आठवी संतान के रूप में हुआ था। सभी लोग आप को श्रीकृष्ण जी की प्रतिमूर्ति समझने लगे। इसीलिए प्रेम से इनको “कृष्ण जी” भी कहने लगे और आगे चलकर प्रतिमूर्ति आप जिद्दू कृष्णमूर्ति के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुए।

अचानक माता संजीवम्मा का स्वर्गवास सन् 1905 ई0 में हो गया। आपके पिता श्री के सामने बच्चों के पालन पोषण की समस्या उत्पन्न हुई, इसलिए सन् 1908 ई0 में आप बालक जिद्दू कृष्णमूर्ति सहित अपने चार पुत्रों को लेकर ‘थियोसोफिकल’ सोसायटी मद्रास चले गये। उस समय श्रीमती

●●● वीथिका ●●●

एनीबेसेन्ट इस सोसाइटी की सर्वेसर्वा थीं। वहां पर रहने का आमंत्रण श्रीमती एनीबेसेन्ट से मिला था। अतः श्री जिद्दू नारायनी अपने इन बच्चों के साथ वहां पर रहने लगे और अपनी सेवाएँ सोसाइटी को समर्पित कर दी। ताकि बच्चों का अच्छा पालन हो सके।

प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य है —

जे० कृष्णमूर्ति की शिक्षानीति की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

शोध विधि :

इस अध्ययन में **जे० कृष्णमूर्ति** के शिक्षा सम्बन्धी विचारों की समीक्षा की गयी है। किसी भी शिक्षा शास्त्री के विचारों पर उसके जीवन की घटनाओं एवं परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है अतः **जे० कृष्णमूर्ति** के जीवन की प्रमुख घटनाओं एवं उनके कार्यों का सबसे पहले विश्लेषण किया गया है। शिक्षा सम्बन्धी विचारों को अध्ययन करने की एक विधि ऐतिहासिक विधि है जिसमें इतिहास की पद्धति अपनायी जाती है। इस पद्धति में व्यक्ति के जीवन की प्रमुख घटनाओं को देखा जाता है और उन घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है।

शिक्षा नीति :-

शिक्षण को अंतः क्रिया के आधार पर सम्पन्न किया जाता है। शिक्षा में बच्चों को केन्द्र मानकर मनोवैज्ञानिक तरीकों से ज्ञान दिया जाता है ताकि प्रत्येक छात्र ज्ञान को व्यवहारिक रूप से आत्मसात कर सके। महान शिक्षाशास्त्री “गार्लिक” ने शिक्षण के तरीकों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि शिक्षक का निर्णय कि वह क्या पढ़ायेगा, विषय सामग्री को व्यवस्थित करना और बाद में वह सोचता है कि वह उनको किस प्रकार से व्यवस्थित करके प्रस्तुत करना है आदि कार्य शिक्षण विधियों में आते हैं।

शिक्षण-विधि :-

जे० कृष्णमूर्ति जी ने प्राचीन तथा प्रचलित शिक्षण प्रविधियां, और

शिक्षण सूत्रों को न मानकर नवीन शिक्षण विधियों को माना है क्योंकि उनका शिक्षण करने का तरीका मनोवैज्ञानिक रहा है। वे शिक्षा को भयरहित, दवाब रहित तथा संस्कार रहित मानते हैं। इसीलिए उनकी शिक्षण विधियां भी भिन्नता रखती है।

बच्चों में क्रिया करने की भावना होती है। इस भावना का विकास स्वक्रिया या हाथ से कार्य करने के द्वारा सीखने की ओर प्रेरित होना चाहिए ताकि वह विभिन्न प्रकार के स्वनिर्मित अनुभवों (ज्ञान) को एकत्रित कर सकें। आज हम विभिन्न तरीकों से शिक्षा देने का प्रयत्न करते हैं जो उनके स्वाभाविक विकास में बाधक होता है। स्वक्रिया द्वारा सीखा गया ज्ञान रुचिमय, क्रियामय, स्थायी और व्यवहारिक होता है जो बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है।

बच्चों में खोज प्रवृत्ति जन्म से होती है। उनकी संवेदन शक्ति तथा प्रत्यक्षीकरण भाव बहुत ही तीव्र होता है। वे परिवार की वस्तुओं, व्यक्तियों, विचारों, इशारों को पहचान कर व्यवहार करना दिन प्रतिदिन सीखते हैं और उनमें नया करने की ओर ललक बनी रहती है। अतः वे अपनी समस्याओं, बाधाओं, रुकावटों, उलझनों को स्वयं दूर कर सकें, ऐसा हल खोजने की प्रवृत्ति का विकास शिक्षक द्वारा होना चाहिए।

बच्चों में अवलोकन या निरीक्षण की प्रवृत्ति विशेष होती है। अतः वे सभी जानकारियों को छूकर, देखकर, सूँघकर और समझकर प्राप्त करते हैं। अवलोकन से ज्ञान की प्रतिमा उनके मस्तिष्क में स्थापित हो जाती है और फिर वे उसका प्रयोग अपने व्यवहार में करने लगते हैं। अतः शिक्षण को निरीक्षण विधि के द्वारा दिया जाये तो वह सार्थक एवं स्थायी बन सकेगा। उनका मत है कि शिक्षक को स्वाभाविक तरीकों का प्रयोग करना चाहिए। मानव निर्मित बाध्यताओं से स्वाभाविक 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एवं 17वीं शताब्दी के पूर्वान्ध में बेकन ने अपने विचारों से पश्चिम को अत्यधिक प्रभावित किया। उसने सत्यान्वेषण के लिए वैज्ञानिक निरीक्षण पर बल दिया और कहा

●●● वीथिका ●●●

कि यर्थाथ का ज्ञान अन्तदर्शन से प्राप्त न होकर बाह्य निरीक्षण से प्राप्त होता है।

कृष्णमूर्ति का मानना है कि कोई भी शिक्षक किसी भी प्रकार सत्ता का भय दिखाकर बालक में सदगुणों का विकास नहीं कर सकता इनके अनुसार सत्ता बड़ी भयानक, विनाशकारी एवं निरकुंश है अतः सत्ता का भय दिखाये बिना छात्र में अनुशासन ले आना कि वह समय पर भोजन करें, समय पर विद्यालय पहुँचें, अनावश्यक बातचीत न करें साथ ही उनमें आत्म सम्मान की भावना भी जागृत हो और वह छात्रों से सम्मान की मांग करता है तो स्वयं भी छात्रों का सम्मान करे। जो शिक्षक स्वयं अपने को नहीं समझते यदि बालक के साथ अपने सम्बन्ध को नहीं समझते, उनमें मात्र सूचनाएँ ही भरते रहते हैं तथा परीक्षाएं पास कराते रहते हैं वह नवीन शिक्षा का सृजन नहीं कर सकते। छात्र इसलिए होता है कि उसका मार्ग दर्शन किया जाये, यदि मार्गदर्शक स्वयं ही भ्रान्त, संकीर्ण राष्ट्रवादी सिद्धान्तों से ग्रस्ति है तो स्वाभाविक ही उसका शिष्य भी वहीं होगा जो वह है।

ऐसी अवस्था में शिक्षा और अधिक भ्रान्ति तथा कलह का कारण बनेगी। एक सच्चा अध्यापक वह नहीं जिसने एक प्रभावशाली शिक्षण संस्थान का निर्माण किया या जो राजनीतिज्ञों का एक उपकरण है और न तो वह एक आदर्श, एक विश्वास अथवा एक देश से बंधा है। सच्चा अध्यापक अभ्यंतर से समृद्ध होता है। अतः अपने लिये कुछ नहीं चाहता, वह महत्वाकांक्षी नहीं होता इसलिए वह किसी भी रूप में सत्ता की चाह नहीं करता वह अपने अध्यापन को पद अथवा सत्ताधिकार प्राप्त करने का साधन नहीं बनाता और इसलिए समाज की बाद्धता से तथा संस्कारों के नियंत्रण से मुक्त होता है। एक प्रबुद्ध सभ्यता में ऐसे अध्यापकों का आधारभूत स्थान होता है क्योंकि सच्ची संस्कृति इन्जीनियरों और टेकनीशियों पर नहीं बल्कि शिक्षकों पर आधारित होती है।

शिक्षार्थी

शिक्षार्थी हमेशा ज्ञान का भूखा होता है। वह प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ

सीखता है और उसे अपने अनुभव का एक हिस्सा बना लेता है। सीखना तभी घटित होता है जब शिक्षक एवं शिक्षार्थी परस्पर संवाद की स्थिति में होते हैं।

“मेरे विचार से सीखना तभी होता है जब आपके और छात्र के बीच वही संवाद की अवस्था हो जो मेरे और आपके बीच है और संवाद का अर्थ सम्प्रेषण करना, सम्पर्क में आना, किसी अनुभूति को संचारित करना, सहभागी होना, न केवल शाब्दिक स्तर पर बल्कि बौद्धिक स्तर पर भी अनुभूति का और अधिक गहराई एवं और अधिक सूक्ष्मता से अनुभव करना।

जे०कृष्णमूर्ति जी के शिक्षार्थी सम्बन्धी विचारों को संक्षिप्त रूप से निम्न रूप में प्रस्तुत किया जाता है –

1. शिक्षार्थी को स्वतंत्रता और अनुशासनमय जीवन का विकास करना चाहिए ताकि वह सम्यक बुद्धि, संवेदनशीलता तथा अवबोध का विकास करके निश्चित व्यवस्था का अनुगमन कर सके।
2. शिक्षार्थी को एकाग्रता का विकास करने के लिए ध्यान करने की आदत डालनी चाहिए ताकि वह सत्य की अनुभूति शांतिपूर्ण तरीके से कर सके।
3. शिक्षार्थी को समग्र अवलोकन विधि का विकास करना चाहिए जिससे उसमें समष्टि के प्रति जागरूकता और समानता का भाव उत्पन्न हो सके।
4. शिक्षार्थी को लालची तथा स्वार्थी नहीं होना चाहिए ताकि वह पुरातन संस्कारों से रहित होकर स्वनिर्मित जीवन का विकास कर सके।
5. शिक्षार्थी की भावना धार्मिक और मनोवैज्ञानिक हो ताकि वह एक नूतन विश्व का निर्माण मानवीय प्रेम और सूक्ष्म तथा क्रमबद्ध ज्ञान से कर सकें।
6. शिक्षार्थी को समग्र पर्यावरण के प्रति जागरूक होना चाहिए ताकि वह संसार में फैले सत्य, सौन्दर्य, करुणा, कृपा के सही रूप से दर्शन कर सके।
7. स्वाभाविकता का विकास छात्र तभी कर सकता है जब किसी भी प्रकार

●●● वीथिका ●●●

- की आज्ञाकारिता से स्वयं को मुक्त करता है। तभी उसकी सोच ताजगी भरी एवं स्वाभाविक होती है जो स्व अनुभूति से विकसित होती है।
8. शिक्षार्थी को सदैव भय से मुक्त रहना चाहिए। भय का आविर्भाव मृत्यु(शारीरिक और विचारों की) से होता है। अतः जब हम में को समाप्त कर देते हैं तो मृत्यु का भय सदैव के लिए समाप्त हो जाता है।
 9. शिक्षार्थी को अहिंसा का पालन सदैव करना चाहिए ताकि वह किसी को भी विचार भाव, क्रिया आदि के द्वारा शोषण से बचा सके। इस प्रकार से मानवजगत में शांति स्थापित हो सकती है।
 10. शिक्षार्थी को अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक होना चाहिए ताकि वह उनका निदान अपने तरीके से कर सके।
 11. शिक्षार्थी को अद्वैतवादी होना चाहिए जिससे उसमें संसार के प्रति आसक्त और अनासक्त विकसित हो सके। यही एक रास्ता परम् आनन्द का स्रोत है।
 12. प्रत्येक शिक्षार्थी को मुक्ति का प्रयास करना चाहिए ताकि वह सांसारिक भाव से ऊपर उठकर समग्र चेतना की अनुभूति कर सके। इस अनुभूति में वह संसार पर करुणा, दया, प्रेम, की वर्षा करता है और स्वयं में शांति, कोमलता, सौम्यता, उदारता, सहृदयता और सौन्दर्य का विकास करता है।

अनुशासन

अनुशासन प्रत्येक मानव, समाज और राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक होता है। प्रश्न यह उठता है कि अनुशासन का स्वरूप दमनात्मक, प्रभावात्मक या मुक्तात्मक आदि में से कैसा हो? शिक्षार्थी के लिये अनुशासन परमावश्यक माना गया है। बच्चों का विकास विद्यालय के वातावरण में समाज के लिये तैयार किया जाता है। अतः विद्यालय की अपनी व्यवस्था, दिनचर्या, अध्ययन- अध्यापन शैली आदि ही अनुशासन का परिणाम होता है।

इसीलिए बोर्ड आफ एजूकेशन ने अनुशासन को एक साधन माना है जिसके द्वारा बच्चों को व्यवस्था, उत्तम आचरण और उनमें निहित सर्वोत्तम गुणों की आदत को प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

चूंकि जे०कृष्णमूर्ति जी अनुशासन शब्द को उपयुक्त नहीं मानते हैं अतः इन्होंने व्यवस्था को ही अनुशासन माना है। इन्होंने “शिक्षा संवाद (पृ०२२) में लिखा है:-

“अनुशासन का अर्थ अनुकूलन, अनुकृति आज्ञा पालन है। इस का अर्थ यह भी है कि जो तुम्हें बताया जाता है वह करो। क्या ऐसा नहीं है? परन्तु यदि आप स्वतंत्र होना चाहते हैं और प्रत्येक मनुष्य को पूर्णतया स्वतंत्र होना चाहिए अन्यथा वे पुष्पित नहीं हो पायेंगे, अन्यथा वे वास्तविक मनुष्य नहीं बन पायेंगे तो आपको स्वयं अपने लिये वह पता लगाना होगा कि व्यवस्थित होने का क्या तात्पर्य है। इन सबकी खोज ही अनुशासन है।

श्री कृष्णमूर्ति छात्रों पर तथाकथित रूप से थोपे गये अनुशासन के विरोधी हैं। वे छात्र को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्षधर हैं किन्तु स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी करना नहीं होता। ऐसी स्वतंत्रता तो सर्वत्र अव्यवस्था ही फैलायेगी स्वतंत्रता का अर्थ छात्र को समग्र अवलोकन करने की स्वतंत्रता, जिज्ञासा व्यक्त करने की स्वतंत्रता, शिक्षक से वार्तालाप एवं सन्देह प्रकट करने की, निरीक्षण करने की स्वतंत्रता आदि है। कृष्णमूर्ति अनुशासन को व्यवस्था का नाम देते हैं और स्वतंत्रता एवं व्यवस्था का एक सिक्के के दो पहलू मानते हैं। व्यवस्था स्वाभाविक रूप से खिलने वाला फूल है जो कभी मुरझाता नहीं है क्योंकि यह अन्तर्मन की उपज है। कृष्णमूर्ति के अनुसार एक अनुशासित मन कदापि स्वतंत्र नहीं होता और न वह मन स्वतंत्र है जिसने इच्छाओं को दबा दिया है। केवल वही मन स्वतंत्र है जो इच्छाओं की समस्त गतिविधियों को भली प्रकार समझता है। उस गति को संचारित करता है जो विचार एवं विश्वासों के घेरे के भीतर होती हैं। ऐसे अनुशासन से ही व्यवस्था आती है व्यवस्था से स्वतंत्रता का जन्म होता है और स्वतंत्रता में ही अच्छाई प्रेम एवं

●●● वीथिका ●●●

प्रज्ञा का प्रस्फुटन होता है, स्वतंत्रता में ही पक्षी उड़ सकता है, बीज अंकुरित होता है। बालक विवेक जन्य आन्तरिक स्वतंत्रता में दूसरों का ध्यान रखकर वार्ता को ध्यान से सुनकर, समय पालन कर, स्वाध्याय कर आत्मानुशासन को प्राप्त होता है। यही उत्तम अनुशासन है।

विद्यालय

आधुनिक युग में स्कूल (विद्यालय) शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द स्कोला से मानी जाती है। इसका अर्थ होता है आराम या अवकाश। इस सन्दर्भ में ए० एफ० लीच ने लिखा है—“वाद—विवाद या वार्ता के स्थान जहां एथेन्स के युवक अपने अवकाश के समय को खेल—कूद, व्यायाम और युद्ध के प्रशिक्षण में बिताते थे, धीरे— धीरे वशन और उच्चकलाओं के स्कूलों में बदल गये। एकेडमी के सुन्दर उद्यानों में व्यतीत किये जाने वाले अवकाश के माध्यम से विद्यालयों का विकास हुआ।”

जे०कृष्णमूर्ति जी के विद्यालय सम्बन्धी विचार को निम्न विशेषताओं में प्रस्तुत किया जाता है:—

1. विद्यालय का वातावरण समन्वित व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है जो एक नवीन विश्व तथा संस्कृति के निर्माण में सहयोग देता है। इन्होंने 'शिक्षा एवं जीवन का महत्व' (पृ०73) लिखा है— “आशा केवल समन्वित व्यक्ति से ही की जा सकती है और उन्हें उत्पन्न करने में छोटे विद्यालय ही सहायक सिद्ध हो सकते हैं। यही कारण है कि बड़ी शिक्षण संस्थाओं में आधुनिकतम एवं श्रेष्ठतम शिक्षा पद्धतियों का प्रयोग करने के स्थान पर सीमित संख्या में बालकों एवं बालिकाओं वाले ऐसे विद्यालयों का होना अधिक महत्वपूर्ण है जिनमें उचित प्रकार के शिक्षक अध्यापन कार्य करते हों।
2. विद्यालय के ऊपर अधिकार या नियंत्रण न सरकार का हो और न समाज का बल्कि उस व्यक्ति का हो जो स्वयं के प्रति ईमानदार तथा जागरूक

है। वह स्वयं को जानता है, बच्चों को समझता है और नवीन पर्यावरण के सृजन में रुचि रखता है। जे०कृष्णमूर्ति का मत है कि ऐसा व्यक्ति अपने घर पर ही छोटा मोटा विद्यालय खोलकर उत्साह के साथ शिक्षण कर सकता है। यदि वह सही है तो उसे अवसरों की कमी नहीं रह सकती। अच्छे विद्यालय की स्थापना के लिए आत्म त्याग, प्रेम और अवबोध की आवश्यकता होती है। यदि बालक के प्रति प्रेम है तो सभी वस्तुएँ सम्भव हैं, अन्यथा धन अनिवार्यतः भ्रष्ट बना देता है।

3. विद्यालय एक नाव, परिवार की तरह से होता है जिसे चलाने वाला योग्य, अनुभवी, उत्साही, क्रियाशील तथा प्रज्ञायुक्त होना चाहिए, ताकि विद्यालय रूपी परिवार अपने अस्तित्व को नवीन कलेवर में विकसित कर सके। जे०कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि सही विद्यालय का निर्माण प्रधानाध्यापक तथा उसके सहयोगियों द्वारा ही होता है। एक दृढ़ चरित्र वाला व्यक्ति विद्यालय का निर्माण तो कर सकता है लेकिन साथियों का सहयोग नहीं ले सकता। यदि सभी विद्यालय के लोग मुक्त एवं विवेकशील होने के लिए प्रयत्नशील हों तो प्रत्येक स्तर पर एक दूसरे का साथ एवं सहयोग संभव हो जाता है।
4. विद्यालय को सामूहिक रुचि का केन्द्र होना चाहिए। जब आपस के विचार और कार्य टकराते हैं तो विरोध और भ्रान्ति पैदा होती है, जिसको प्रेम व उत्साह के द्वारा ही करके सहयोग का सम्बर्द्धन दिया जाता है। आपने "शिक्षा एवं जीवन का महत्व" (पृ० 84-85) में लिखा है— "किसी भी अध्यापक को प्रधानाध्यापक से भयभीत नहीं होना चाहिए और न प्रधानाचार्य को ही अपने वरिष्ठ अध्यापकों से। जब सभी व्यक्तियों के बीच समानता होती है तो सुखद सहमति संभव होती है यही सही प्रकार के विद्यालय का चरित्र होता है। वास्तविक सहयोग तभी प्राप्त होता है जब उच्च एवं निम्न भाव का अस्तित्व ही न रहे।
5. विद्यालय की कार्यप्रणाली की समरसता उसकी समान वितरण की

●●● वीथिका ●●●

भावना पर टिकी होती है। आज मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षा- शास्त्री विद्यालय के कार्यों को बोझ न मानकर रचनात्मक कार्य मानते हैं। अतः प्रत्येक की क्षमता तथा योग्यता के आधार पर कार्य (भार)का समान वितरण विद्यालय में सुखद वातावरण तैयार करता है। इनके अनुसार – “सही शिक्षा एक बड़े समूह में नहीं दी जा सकती। प्रत्येक बालक को अध्ययन के लिए धैर्य, सावधानी, सम्यक बुद्धि की आवश्यकता होती है। बालक की प्रवृत्तियों का, उसकी प्रवृत्तियों का एवं उसके स्वभाव का निरीक्षण, उसकी कठिनाइयों को समझना, उसके वंशानुक्रम तथा पैत्रिक प्रभाव को ध्यान में रखना, न कि उसे किसी विशेष वर्ग कोटि के ही अन्दर रखना, इसे सबके लिए स्फूर्ति से भरे एक ऐसे नमनीय मन की आवश्यकता होती है जो किसी विशेष प्रणाली अथवा पूर्वाग्रह से अनुशासित नहीं है। उसके लिए कुशलता की, तीव्र अभिरुचि की और सबसे अधिक प्रेम भावना की आवश्यकता होती है और ऐसे शिक्षकों का विकास करना जिनमें ये गुण हो, आज की प्रमुख समस्याओं में से एक है।”

6. विद्यालय के संचालन में प्रधानाचार्य, शिक्षकवर्ग, छात्रवर्ग तथा कर्मचारीवर्ग सभी का उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए ताकि जनतंत्रीय व्यवस्था का अनुपालन संभव हो सके। विभिन्न समितियों का गठन हो, कार्य वितरण हो, निर्देशन की व्यवस्था हो, उत्तरदायित्व का पालन किया जाये ताकि विद्यालय की सभी क्रियाओं में समरसता उत्पन्न हो सके। इस प्रकार से विद्यालय का प्रशासन ही जीवन में स्वशासन को स्थापित करने की पूर्व प्रस्तुति है।
7. विद्यालयों के द्वारा समग्र मानव जाति, समाज, राष्ट्र, सम्प्रदाय, धर्म, जाति, उच्च, निम्न आदि भेदभाव को मिटाकर सभी के कल्याण के भाव की स्थापना का विकास करना है। इसके लिए स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा आदि के भावों का विकास विद्यालयों के द्वारा होना चाहिए।

हममें से प्रत्येक को सच्चा बनना होगा और हमें स्वयं को शिक्षित भी करना होगा। अतः सम्यक शिक्षा के लिए धैर्य, सहानुभूति, तथा प्रेम को चारों ओर फैलाना चाहिए, जिससे सभी प्रकाशित हो सके।

परिणाम एवं निष्कर्ष :-

1. एक सच्चा अध्यापक वह नहीं जिसने एक प्रभावशाली शिक्षण संस्थान का निर्माण किया या जो राजनीतिज्ञों का एक उपकरण है और न तो वह एक आदर्श, एक विश्वास अथवा एक देश से बंधा है। सच्चा अध्यापक अभ्यंतर से समृद्ध होता है। अतः अपने लिये कुछ नहीं चाहता, वह महत्वाकांक्षी नहीं होता इसलिए वह किसी भी रूप में सत्ता की चाह नहीं करता। वह अपने अध्यापन को पद अथवा सत्ताधिकार प्राप्त करने का साधन नहीं बनाता और इसलिए समाज की बाद्धता से तथा संस्कारों के नियंत्रण से मुक्त होता है। एक प्रबुद्ध सभ्यता में ऐसे अध्यापकों का आधारभूत स्थान होता है क्योंकि सच्ची संस्कृति इन्जीनियरों और टेकनीशियों पर नहीं बल्कि शिक्षकों पर आधारित होती है।
2. शिक्षार्थी हमेशा ज्ञान का भूखा होता है। वह प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ सीखता है और उसे अपने अनुभव का एक हिस्सा बना लेता है। सीखना तभी घटित होता है जब शिक्षक एवं शिक्षार्थी परस्पर संवाद की स्थिति में होते हैं।
3. श्री कृष्णमूर्ति छात्रों पर तथाकथित रूप से थोपे गये अनुशासन के विरोधी हैं वे छात्र को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्षधर हैं किन्तु स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी करना नहीं होता ऐसी स्वतंत्रता तो सर्वत्र अवस्था ही फैलायेगी स्वतंत्रता का अर्थ छात्र को समग्र अवलोकन करने की स्वतंत्रता, जिज्ञासा व्यक्त करने की स्वतंत्रता, शिक्षक से वार्तालाप एवं सन्देह प्रकट करने की निरीक्षण करने की स्वतंत्रता आदि है। कृष्णमूर्ति अनुशासन को व्यवस्था का नाम देते हैं और स्वतंत्रता एवं व्यवस्था को एक सिक्के के दो पहलू मानते हैं। व्यवस्था स्वाभाविक रूप से खिलने वाला फूल है जो

●●● वीथिका ●●●

कभी मुरझाता नहीं है क्योंकि यह अन्तर्मन की उपज है।

4. विद्यालय एक नाव, तरह से होता है जिसे चलाने वाला योग्य, अनुभवी, उत्साही, क्रियाशील तथा प्रज्ञायुक्त होना चाहिए, ताकि विद्यालय रूपी परिवार अपने अस्तित्व को नवीन कलेवर में विकसित कर सके। जे०कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि सही विद्यालय का निर्माण प्रधानाध्यापक तथा उसके सहयोगियों द्वारा ही होता है। एक दृढ़ चरित्र वाला व्यक्ति विद्यालय का निर्माण तो कर सकता है लेकिन साथियों का सहयोग नहीं ले सकता। अतः अध्यापक सम्पूर्ण के लिए स्वयं को उत्तरदायी समझे।
5. विद्यालयों के द्वारा समग्र मानव जाति, समाज, राष्ट्र, सम्प्रदाय, धर्म, जाति, उच्च, निम्न आदि भेदभाव को मिटाकर सभी के कल्याण के भाव की स्थापना का विकास करना है। इसके लिए स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा आदि के भावों का विकास विद्यालयों के द्वारा होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कृष्णमूर्ति— द इयर्स ऑफ अवेकेनिंग : मेरी लुटियेंस, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन, इण्डिया, मद्रास।
2. कृष्णमूर्ति— द इयर्स ऑफ फुलफिलमेंट : मेरी लुटियेंस, एवन बुक्स, न्यूयॉक।
3. जे० कृष्णमूर्ति: रेने फाउरे, चेतना, बम्बई
4. द माइण्ड आफ जे० कृष्णमूर्ति: संपादित— लुई एस०आर०वास, जैको पब्लिशिंग हाउस, बम्बई
5. फिलोसोफी आफ जे०कृष्णमूर्ति: आर०के० श्रृंगी, मुंशीराम, मनोहर लाल, नई दिल्ली।
6. कपिल, एच०के० 1980 अनुसंधान विधियां— आगरा
7. पाण्डेय, आर०एस० 1970 शिक्षादर्शन आगरा

8. पाण्डेय आर०एस० 1993 मूल्य शिक्षा आगरा
9. ओड, एल०के० शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि ।

Websites :

- www.eric.ed.gov
- www.dartmouth.edu
- www.enwikipedia.org/wiki

अध्यापक शिक्षा : नियत, नीति और नियति

जितेन्द्र सिंह गोयल*

अध्यापक शिक्षा को मात्र आर्थिक औजार के तौर पर विकसित नहीं किया जा सकता, जिसका प्रमुख ध्येय नियोक्ता की आवश्यकता पूरी करने के लिए छात्रों को व्यवहारिक कुशलता से लैस करना हो, न ही हमारी अध्यापक शिक्षा का उददेश्य ऐसे शिक्षक पैदा करना होना चाहिए जो चीन से टक्कर ले सकें। जीवन के वृहत्तर मामलों पर गहन शोध की बजाय महज नौकरी के कुछ नुक्ते सिखाना भर दीर्घकाल में धातक सिद्ध हो सकता है। भारत को विकास के लिए ज्ञानार्जन के साथ-साथ उच्च शिक्षा के महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है परन्तु शिक्षा का क्षेत्र इतना व्यापक है कि कम समय व क्षमता के होते हुए शिक्षा जैसे विशद विषय के सभी पक्षों पर विचार करना कठिन प्रतीत होता है, परन्तु फिर भी यहाँ उस महत्वपूर्ण पक्ष पर विचार किया जाना संभव प्रतीत होता है जो कि शिक्षा के विकास की दिशा निर्धारित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है अथवा यदि कहा जाये कि शिक्षा रूपी भवन उसी पर खड़ा होता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, और वह महत्वपूर्ण पक्ष है – अध्यापक शिक्षा। किसी राष्ट्र में अध्यापक शिक्षा जैसी होती है, वहाँ शिक्षा भी वैसी ही होती है और फिर राष्ट्र का विकास भी उसी गति से होता है, यह सर्वविदित है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अध्यापक शिक्षा की दिशा के दोनों पक्षों की उपर्युक्त समस्याओं का निराकरण कर समय की मांग के अनुसार कौशल आधारित मॉडल का निर्माण कर उसकी क्रियान्विति की सुनिश्चितता हेतु व्यूह रचना का निर्माण कर सुधार करने के प्रयास करने चाहिए ताकि राष्ट्र को योग्य शिक्षक उपलब्ध हो सकें एवं **सभी के लिये शिक्षा (Education for all)** की संकल्पनापूर्ण होने के साथ-साथ गुणवत्ता आधारित जीवनोपयोगी शिक्षा भी मिल सके एवं राष्ट्र भी तेजी से

* सीनियर रिसर्च स्कॉलर, (शिक्षा विभाग) लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

विकास पथ पर आगे बढ़ सके। भारत में अध्यापक शिक्षा के निजीकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। यह शिक्षा सुधार के समग्र कार्यक्रम का नतीजा न होकर सार्वजनिक क्षेत्र के धुआस्त होने का दुष्परिणाम है। यह ढर्रा परेशान करने वाला है, यह आशा की जाती है कि भारत इस पहलू पर ध्यान देगा और अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में धनराशि डालेगा।

1.1 प्रस्तावना –

“शिक्षा सिर्फ अक्षर ज्ञान के लिए नहीं हैं, बल्कि सशक्तिकरण का वह हथियार है, जो हमें समाज में बेहतर जीवन जीने के योग्य बनाती है। शिक्षा मानव को सुसंस्कृत तथा विवेकशील बनाने का माध्यम है, शिक्षा मानव का एक सच्चा आभूषण है तथा जनकल्याण का सशक्त माध्यम है। विद्यालय शिक्षा प्रसार के पावन मन्दिर होते हैं, जहाँ से ऐसा आलोक प्रसारित होता है, जो व्यष्टि के साथ-साथ समष्टि को भी अभ्युदय और श्रेयस की ओर उन्मुख करता है। शिक्षा सर्वात्मना हमारे श्रेय और प्रेय का साधन है। शिक्षा का अर्थ है –सीखना। ज्ञान सीमातीत होता है, उसकी कहीं इति नहीं।

शिक्षक शिक्षा जगत का एक अमूल्य घटक है, जिसके आदर्श और शिक्षाओं का विद्यार्थियों के जीवन पर व्यापक एवं सशक्त प्रभाव पड़ता है। माता-पिता से प्राप्त दुर्लभ जीवन गुरु के बिना संस्कारित नहीं होता है। ब्रह्मा और शिव के समान हो जाने पर भी गुरु के बिना इस संसार रूपी सागर को पार कर पाना अत्यन्त कठिन है। गुरु आत्मसाक्षात्कार कराता है। सत्कर्म और श्रम की आग में तपाकर गुरु पारस बनाकर कुन्दन बनाता है। गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। गुरु चरण के नख की ज्योति मणि समान है जिनके स्मरण से हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है। गुरु हमारे जीवन को परिष्कृत एवं परिमार्जित करता है।

यद्यपिद्यीता निगमाः वाङ्गा आगमाः प्रिये।

अध्यात्मादिनि भास्त्राणि ज्ञानं नास्ति गुरुं बिना।।

(गुरु गीता ,श्लोक 98)

●●● वीथिका ●●●

मनुष्य चाहे चारों वेद पढ़ ले, वेद के छह: अंग पढ़ ले, अध्यात्मशास्त्र आदि अन्य सर्वशास्त्र पढ़ ले, फिर भी गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता। अध्यापन के व्यवसाय को राष्ट्र निर्माण के कार्य से जोड़कर इसे विशेष महत्त्व दिया गया है क्यो कि अध्यापक ही भावी नागरिकों के चरित्र का निर्माता, मानवीय मूल्यों का निर्धारक और अनुशासन का स्तम्भ होता हैं। समाज में शिक्षक ही एक मात्र ऐसा व्यक्ति है जो अपना कार्यनियन्ता, क्रियान्वयक और मूल्यांकनकर्ता भी है।

समाज में जब भी परिवर्तन आता है। शिक्षा के साथ शिक्षक की भूमिका में भी परिवर्तन आता है। बच्चों की शिक्षा—दीक्षा में गुरु की महत्ता तो निर्विवाद रूप से रही है। प्रत्येक काल में यह महत्ता मौजूद थी, इस महत्ता में यदि फर्क पड़ा है तो वह इस भूमिका के निर्वाह को लेकर ही पड़ा है, कि कितनी बुद्धिमता और दूरदर्शिता से शिक्षकों ने इसे निभाया है। समय की गति कितनी ही तीव्र क्यों न हो जाये, शिक्षा में शिक्षकों की भूमिका को नकार पाना असम्भव होगा।

डॉ0 सयैदीन ने एक अध्यापक की महत्ता को बताते हुए कहा है “यदि आप किसी देश की जनता के सांस्कृतिक स्तर को मापना चाहते हैं तो इसका अच्छा तरीका यह कि आप मालूम करें कि उस समाज में अध्यापकों की सामाजिक स्थिति क्या है तथा उन्हे कितनी सामाजिक प्रतिशठा प्राप्त है।”

शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी को केन्द्र में रखने की आवश्यकता को रेखांकित करने के बावजूद रबीन्द्रनाथ टैगोर ने गुरु की भूमिका और महत्ता पर विशेष बल दिया हैं। उन्होने इस सन्दर्भ में गुरु को शिक्षक से अलग करके देखा है—“प्रारम्भ में ही ज्ञान शिक्षा का आश्रम स्थापित करने के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है, शिक्षक तो समाचार पत्रों में विज्ञापन देते ही दौड़ पड़ते हैं, पर गुरु तो फरमाईश करने पर भी नहीं पाए जा सकते” किसी भी राष्ट्र का हित उसके अध्यापक के हित पर निर्भर है अध्यापक ही हमारे भविष्य का संरक्षक हैं। अध्यापक बनाने के कारखाने नहीं बनाये जा सकते हैं। अध्यापन एक कला है। उस कला में निपुणता प्राप्त करने के लिए पहली आवश्यकता

कृछ उन गुणों की हैं, जिन्हें जन्मजात गुण कहा जाता है, जिस व्यक्ति में ये गुण होते हैं, वह उतना ही दक्ष होता है। इसके लिए आवश्यकता है कि अध्यापक शिक्षा की व्यवस्था की जाये क्यों कि जन्मजात शिक्षक उतनी संख्या में उपलब्ध नहीं हो पाते जितने कि चाहिये।

1.2 भारत में अध्यापक शिक्षा का उद्भव एवं विकास-

1.2.1 वैदिक काल में अध्यापक शिक्षा-

वैदिक काल में जिस प्रकार अन्य व्यवसायों के लिए प्रशिक्षण दिया जाता था, उस प्रकार अध्यापक कार्य के लिए किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं थी। वैदिक काल में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। गुरुकुलों में शिक्षा देने का कार्य न केवल ब्राह्मण शिक्षा करते थे बल्कि अब्राह्मण आचार्य भी शिक्षा प्रदान किया करते थे। ऋग्वेद प्रतिशाखा में अध्यापक बनना चाहता है तो उसको प्रथम तो स्वीकृत पाठ्यक्रम का भली प्रकार से अध्ययन करना चाहिये और दूसरे ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर ब्रह्मचारी के सब नियमों का पालन करना चाहिये।”

वैदिक काल में अध्यापकों के लिए उनका ज्ञान, आचरण और अनुभव ही शिक्षक बनने के लिए पर्याप्त था। पच्चीस वर्ष होजाने पर जो छात्र गृहस्थ आश्रम बिताने के लिए अपने घरों को नहीं जाना चाहते थे वे आश्रम में ही रुक जाते थे और शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते थे। वैदिक काल में ब्राह्मण परिवारों में वंशानुक्रम से ही शिक्षण कार्य होता था तथा अध्यापक स्वप्रयास तथा स्वअनुभव से अध्यापन कला में दक्ष हो जाता था।

1.2.2 बौद्धकाल में अध्यापक शिक्षा -

बौद्धकाल में जाति विहीन समाज था जब कि हिन्दू धर्म में जाति भेद व्याप्त था। हर व्यक्ति को भिक्षुक बनाने का अधिकार था। बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था में नैतिकता तथा अनुशासन जैसे गुणों पर अत्याधिक बल दिया जाता था। बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था में **पबज्जा तथा उपसम्पदा** संस्कार प्रचलन में थे। वरिष्ठता एवं श्रेष्ठता के आधार पर आचार्य एवं उपाध्याय

●●● वीथिका ●●●

स्तरीय योग्यता प्राप्त कर लेने के पश्चात भिक्षुओं को अध्यापन का अधिकारी समझा जाता था। बौद्ध संघों में वरिष्ठ एवं श्रेष्ठ छात्र ही आचार्यों एवं उपाध्यायों की अध्ययन –अध्यापन में सहायता किया करते थे। इन्हें पित्तिचार्य अथवा सहायक शिक्षक कहा जाता था यही अग्र शिष्य प्रणाली (मोनोटोरियल सिस्टम) औपचारिक शिक्षा के रूप में मानी गयी। बौद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था में ही अध्यापक शिक्षा की औपचारिक रूपरेखा का शुभारम्भ हुआ।

1.2.3. मुस्लिम काल में अध्यापक शिक्षा –

मुस्लिम काल में शिक्षा मकतब एवं मदरसों में दी जाती थी मकतब एवं मदरसों में मौलवी लोग कुरान की शिक्षा प्रदान करते थे इस्लाम धर्म के मदरसों में अरबी भाषा की शिक्षा देने के लिए मौलवियों की नियुक्ति की जाती थी। यदि ऐसे शिक्षक देश में उपलब्ध नहीं होते थे तो उन्हें अरब से शिक्षा देने के लिए बुलाया जाता था। मुस्लिम कालीन शिक्षा व्यवस्था में किसी भी पद पर नियुक्त होने के लिए अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन मुस्लिम विचारधारा का ज्ञान होना आवश्यक था और न ही मुस्लिम शासकों द्वारा किसी भी प्रकार के शिक्षक –प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं की गयी थी। इस काल में किसी भी मुगल सम्राट ने अध्यापक शिक्षा की तरफ ध्यान नहीं दिया। इस काल में अध्यापन कार्य सामान्य तौर पर वंश परम्परागत हो गया इसलिए अलग से अध्यापक शिक्षा का प्रश्न नहीं उठा।

1.2.4. अंग्रेजी भासन व्यवस्था में अध्यापक शिक्षा –

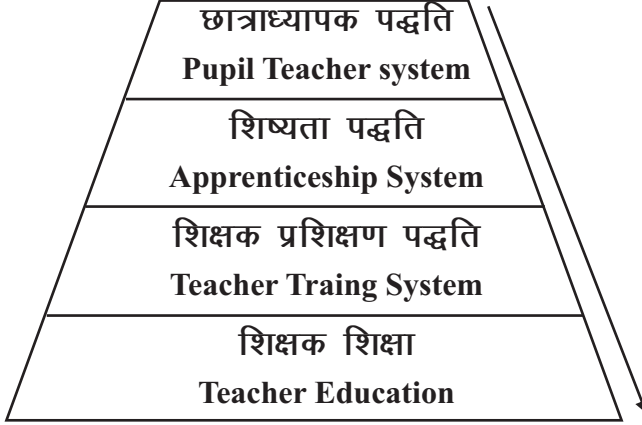
अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था में अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी थी। अंग्रेजी शासन काल में सन 1801 से 1882 तक गैर सरकारी संगठनों द्वारा शिक्षक प्रशिक्षण के लिए सराहनीय कार्य किये गये।

1. सर्वप्रथम डेनिस मिशनरी पादरियों ने अपने विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए सन 1716ई० में ट्रानक्यूवर में शिक्षक –प्रशिक्षण के लिये नार्मल स्कूल की स्थापना की।

2. बम्बई की देशी शिक्षा परिषद ने सन 1815 में 24 शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया और उन शिक्षकों को प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण स्तर को ऊँचा उठाने के लिए भारत के राज्यों के विभिन्न भागों में प्रबन्धकों के रूप में भेजा।
3. सन् 1826 में मद्रास के गवर्नर सर टामस मुनरो के प्रस्ताव के अनुसार मद्रास नगर के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए केन्द्रीय स्कूल की स्थापना की गयी।
4. ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बम्बई में प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना की तथा बंगाल के विभिन्न भागों में नार्मल स्कूलों की स्थापना की।
5. सन 1854 के वुड के घोशणा पत्र द्वारा कम्पनी के संचालकों ने यह इच्छा व्यक्त की कि इंग्लैण्ड की तरह भारत के प्रत्येक प्रान्त में अतिशीघ्र प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित किये जायें तथा प्रशिक्षण के लिए छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जायें।
6. भारतीय शिक्षा आयोग (1882)ने सी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में गुणवत्ता लाने के लिए परीक्षा पर बल दिया तथा यह सिफारिश की कि स्नातकों तथा गैर स्नातकों के लिए अलग-अलग प्रशिक्षण संस्थाएँ स्थापित की जायें।
7. वीसवीं शताब्दी में लार्ड कर्जन ने अध्यापक शिक्षा में सुधार की आवश्यकता पर बल देते हुये कहाँ यदि विद्यालयी शिक्षा को अधिक प्रभावशाली बनाना है तो अध्यापकों को पूर्व प्रशिक्षित होना चाहिये।”
8. हर्टाग कमेटी (1929) ने शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सिफारिशें प्रस्तुत कीं। हर्टाग कमेटी ने स्नातक स्तर के प्रशिक्षण के लिये एल0टी0 इण्टर स्तर के लिए सी0टी0 तथा प्राइमरी स्तर के लिये एच0टी0सी0 पाठक्रम का सुझाव प्रस्तुत किया था।

1.3 भारत में अध्यापक शिक्षा के विकास के चरण—

भारत में अध्यापक शिक्षा का विकास निम्न चरणों में हुआ।



1.4 स्वतन्त्रता प्राप्ति में अध्यापक शिक्षा :-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने शिक्षा के सम्बन्ध में विचार करने के लिए तथा सरकार को सुझाव देने के लिए 1948 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, सन 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग और सन् 1964 में शिक्षा आयोग गठित किये तथा सन् 1968 व 1979 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा सन् 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनायी जिसमें अध्यापक शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक सुझाव प्रस्तुत किये।

1.5 अध्यापक शिक्षा की समस्याएँ –

अध्यापक शिक्षा की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं।

1. प्रवेश सम्बन्धी समस्या
2. पाठ्यक्रम उपयुक्त नहीं, सैद्धान्तिक पक्ष पर विशेष बल।
3. परीक्षा प्रणाली उपयुक्त नहीं
4. अच्छे उपयोगी शोध कार्य की कमी
5. अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम के नियोजन की समस्या
6. प्रशिक्षणियों का नकारात्मक दृष्टिकोण
7. प्रशिक्षित प्राध्यापकों की समस्या

8. पठनीय सामग्रियों की समस्या
 9. बेहतर इंफ्रास्ट्रक्चर का अभाव
- 1.6 अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता के लिये किये जा रहे प्रयास –**
1. 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत हर जिले में जिला एवं प्रशिक्षण संस्थान खोलने की व्यवस्था की गयी।
 2. अध्यापक शिक्षा महाविद्यालयों को सुदृढ़ करने हेतु, शिक्षा में उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान की स्थापना की गयी।
 3. प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्य करने वाले अध्यापकों के लिए एकेडमिक स्टाफ कालेजों में अभिविन्यास कार्यक्रम तथा पुनश्चर्या कार्यक्रम की व्यवस्था की गयी।
 4. अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की स्थापना की गयी।
- 1.7 वर्तमान में अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिये किये जा रहे प्रयास—**
1. वर्तमान में बी0एड0 तथा एम0एड0 पाठ्यक्रम की अवधि को 1 वर्ष से बढ़ाकर दो वर्ष कर दिया गया।
 2. जस्टिस वर्मा कमेटी ने अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिये।
 3. भारत सरकार ने भी अध्यापक शिक्षा में सुधार लाने के लिए **मदन मोहन मालवीय शिक्षक प्रशिक्षण मिशन** की शुरुआत की।
 4. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने भी पारदर्शिता लाने के लिये **टोल फ्री न0** जारी किया।
 - 5- शिक्षक प्रशिक्षण कोर्सों में प्रवेश में एकरूपता लायी जाये, सभी शिक्षक प्रशिक्षण कोर्सों में एक ही प्रवेश परीक्षा से प्रवेश दिया जाये।
 - 6- शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में टीचर एजुकैटर की नियुक्ति के लिये

●●● वीथिका ●●●

एक समान अर्हता हो।

- 7- प्रत्येक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में एक प्रयोगात्मक विद्यालय सम्बद्ध कर दिया जाये।
- 8- शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में आपदा प्रबन्ध विषय को जोड़ दिया जाये।
- 9- राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, टीचर एजुकेटर्स की समस्याओं के निवारण के लिये भी एक टोल फ्री नम्बर जारी करे।
- 10- अध्यापक शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आई0सी0टी0) के प्रयोग पर बल दिया जाये।
- 11- अध्यापक शिक्षा में शोध को बढ़ावा देने के लिये फैलोशिप की व्यवस्था की जाये।

1.8 निष्कर्ष-

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्यापक शिक्षा का निजीकरण एवं व्यावसायीकरण बड़ी तेजी से हुआ है, कुकरमुत्तों की तरह उगते गुणवत्ताविहीन बी. एड. कालेजों तथा अन्य व्यावसायिक संस्थानों ने शिक्षा को कितना मँहगा कर दिया है ? यह सबके सामने है। अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में तभी सुधार सम्भव होगा जब शिक्षण और अनुसंधान की वर्तमान प्रणालियों के स्थान पर स्वीकृत और उपयोगी प्रणालियों को अपनाया जाए, अभी भी भारत के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अनुभवी अच्छे शिक्षकों, उच्चस्तरीय पुस्तकालयों और अच्छी प्रयोगशालाओं का नितांत अभाव है। आगामी पाँच वर्षों की अवधि में व्यापक गुणात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है, परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि इंटरनेट और वेब आधारित सभी आधुनिक तकनीकों का प्रयोग किया जाए। दरअसल यह तथ्यात्मक तथ्य है कि डिजिटल और वेब आधारित माध्यमों को अपनाकर तथा सदुपयोग करके देश के सभी विश्वविद्यालयों में गुणात्मक सुधार हो सकते हैं।

सन्दर्भ —

1. बनर्जी, शुभंकर. प्रतियोगिता दर्पण. भारत की उच्च शिक्षा को विश्वस्तरीय बनाने की चुनौती. अक्टूबर 2011. पृष्ठ संख्या 518
2. दुवे, सत्यनारायण.(2009). अध्यापक शिक्षा. इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन.
3. गुप्ता. अरुण, (2008). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक. इलाहाबाद : आलोक प्रकाशन.
4. गोयलजितेन्द्र सिंह और सुनीताचौधरी (2014).वर्तमान परिदृश्य अध्यापक शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ. जर्नल ऑफ सोशियो इकोनोमिक रिव्यू. मेरठ, अंक-2 (अप्रैल-2014), पृ.सं. 129-133.
5. कुलश्रेष्ठ,रजनी. (2015). शिक्षण-शिक्षा में मूल्य शिक्षा की प्रासिङ्गकता. शिक्षामित्र, 7(4), 24-25.
6. लोढ़ा, जितेन्द्र. नयीसदी की चुनौतियाँ और अध्यापक शिक्षा . भारतीय आधुनिक शिक्षा, त्रैमासिक जर्नल, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, वर्ष-34, अंक-2 (अक्टूबर-2013), पृ.सं. 16-22.
7. पांडे, रामशकल और करुणाशंकर मिश्र. (2005).भारतीय शिक्षा की समसामायिक समस्यायें. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर.
8. राजपूत, जगमोहन सिंह (2002). भारत के अध्यापक सशक्त एवं गतिशील परम्परा के उत्तराधिकारी. भारतीय आधुनिक शिक्षा, त्रैमासिक जर्नल, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, वर्ष-21, अंक-2 (अक्टूबर-2002), पृ.सं. 3-6.
9. त्यागी, गुरुसरन दास (2003). भारतीय शिक्षा का परिदृश्य. आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर.
10. विशिष्ट, विजेन्द्र कुमार. (2003). भारतीय शिक्षा का इतिहास. नई दिल्ली : अर्जुन पब्लिशिंग हाउस ।

बीमारी एवं स्वास्थ्य : भोटिया जनजाति की पारम्परिक से आधुनिकता की स्वीकार्यता

ओमप्रकाश*

नृजातियों में विभिन्न समाज उनकी संस्कृति, रहन-सहन, भाषा-बोली, आचार-विचार आदि समाजों के बीच भिन्नता दर्शाता है। विचार है कि विकास की मुख्यधारा से हटकर जीवन यापन करने वाले जन समूह जनजातियों धारा के माने जाते हैं इन्हीं में भोटिया की जनजाति की बीमारी के बारे में उनकी अवधारणा व इसके आचार में अपनायी जाने वाली पारम्परिक व आधुनिक चिकित्सा पद्धति। इनके बारे में जब गहन शोध को अपनाया गया इनके विचारों को जानने समझने की कोशिश की गयी तो यह आसान नहीं था क्योंकि ये अपनी निजता किसी पर जाहिर नहीं करते क्योंकि वस्तुतः पहाड़ी पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखने वाली यह जनजाति अन्तर्मुखी होती है। प्रत्येक समाज में आचार-विचार का कुछ खुला तथा कुछ बन्द पहलू होता है। अतः विश्वास एक बन्द पहलू है। इनका बीमारी के बारे में विश्वास है कि जादू, भूत-प्रेत, अलौकिक शक्ति, देवी-देवताओं की अप्रसन्नता आदि के कारण आती है और इसको ओझा-पण्डित, जादूगर द्वारा अनुष्ठानिक क्रिया करके ठीक किया जाता है। इसमें पूजा, बलि (जिसमें अधिकांशतः भेड व भैंस आदि) देने से आत्मा शान्त होकर सहायता प्रदान करती हैं। झांड-फूँक, टोना-टोटका, बुरी नजर उतारना जैसे बच्चों की बीमारी का इलाज करने के लिए अपनायी जाने वाली उपचार पद्धति है। लौकिक व अलौकिक में विश्वास करने की पारम्परिक सोच का आधुनिकता के साथ विवाद व मानसिक तनाव पैदा करता है परन्तु समाज में व्याप्त विश्वास जो धीरे-धीरे समाजीकरण व विकास (शारीरिक व बौद्धिक) के साथ जीवन में सोच व क्रिया-कलाप में जो कि स्थान बनाता है उसे वृत्ति को तोड़ना मुश्किल काम है। जनजातियों के

* शोध-छात्र, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

दुर्गम स्थानों पर निवास के कारण उपलब्ध संसाधनों से ही अपने जीवन की रक्षा करना जरूरी था जिसने एक विधान व पारम्परिकता को जन्म दिया। आवश्यकतायें नये विधान खोजने के लिए मजबूर करती है और धीरे-धीरे वही वृत्ति पहचान व परम्परा का रूप धाण करती है। जड़ी-बूटियों से इलाज लगभग सभी प्राचीन समाजों का अंग रहा है। झाड़-फूंक, ओझा-गुनिया, देवी-देवताओं की पूजा, बलि की प्रथायें यहाँ मौजूद हैं जो कभी सभ्य समाज (जो आज विकास की मुख्य धारा में हैं) में भी मौजूद थीं। भोटिया लोग पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था में गुंथे हुए हैं लेकिन शिक्षा, यात्रा, व्यापार-रोजगार के कारण बाहरी लोगों से सम्पर्क के कारण आधुनिकता का विचार अपनाने लगे हैं और सरकारी योजनाओं जिसमें मुख्यतः स्वास्थ्य के लिए उठाये गये कदमों और अभियान में हिस्सेदारी करने लगे हैं। अंग्रेजी दवाओं का इस्तेमाल करने लगे हैं। पूछने पर बताते हैं कि जड़ी-बूटियों का इलाज कारगर तो है लेकिन इनकी पहचान और इनको उपयोग में लाने के लिए की जाने वाली मेहनत के कारण आसान नहीं है इसलिए लोग इस पद्धति से बच रहे हैं। मेडिकल स्टोर, स्थानीय अंग्रेजी दवाओं के डॉक्टर, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में अपना इलाज कराना अब इनको ज्यादा सुविधा जनक लगने लगा है। क्षेत्रीय प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर सुबह से शाम तक बीमारी के कारण इलाज के लिए लोगों की भीड़ यह इंगित करती है कि लोग आधुनिक चिकित्सा पद्धति को अपनाने लगे हैं। लोगों का विचार है कि योग्य चिकित्सक द्वारा दी जाने वाली दवाएं बहुत सारी परेशानियों से मुक्ति दिलाती हैं। विचारों के बदलने से जीवन में जरूरतों की विधियाँ बदलती हैं। नयी पद्धतियाँ अपनायी जाती हैं। इन लोगों ने निश्चय ही आधुनिक चिकित्सा पद्धति के मूल्य को महत्त्व देना शुरू किया है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है जो तकनीकी शिक्षा, ज्ञान, रसायन और मशीनों पर आधारित है। इस पद्धति में इस्तेमाल की जाने वाली दवाइयाँ पूर्णतया मानव निर्मित होती हैं व मरीज को

●●● वीथिका ●●●

सीधे तौर पर लाभ पहुँचाती हैं। लेकिन जो समाज प्राचीन काल से इस पद्धति से अनभिज्ञ रहा है, इसके प्रति सशंकित रहता है। भोटिया जनजाति दुर्गम स्थानों पर रहने वाला पारम्परिक समाज है जहाँ पर हमेशा से अपने जीवन को बचाये रखने के लिए पारम्परिक ज्ञान का इस्तेमाल किया जाता रहा है। लेकिन धीरे-धीरे उन समाजों का शिक्षा, सड़क, रेल यात्रा के माध्यम से आधुनिक कहे जाने वाले समाज से सम्पर्क के कारण अद्यतन विचारों व तकनीक का इस्तेमाल होने लगा है। सरकारी योजनाएँ इन तक पहुँचायी जा रही हैं। गाँव नहीं तो विकास खण्ड स्तर पर अस्पताल, कृषि केन्द्र, योजना केन्द्र की स्थापना करके इनको लाभ पहुँचाने की कोशिश की गयी है। इनके यहाँ दवाओं से होने वाले लाभ का प्रचार-प्रसार किया गया है। इस काम में इन्हीं के गाँवों के शिक्षित युवाओं का सहयोग लिया गया।

धीरे-धीरे प्रचार-प्रसार बढ़ा तो लोगों ने इस ओर ध्यान देना शुरू किया। गाँवों के स्तर पर डॉक्टर व चिकित्सालय की व्यवस्था नहीं दी जा सकी है क्योंकि जनसंख्या घनत्व का कम होना तथा छोटे-छोटे गाँवों का होना है। सड़क मार्ग से केवल विकास खण्डों को ही जोड़ा जा सका है। गाँवों को जे0 आर0 वाई0 की सीमेन्ट की पगडण्डियों व सीढ़ियों से ही जोड़ा जा सका है। अब से कुछ वर्ष पहले तक भोटिया जनजाति के ये गाँव पारम्परिक चिकित्सा पद्धति के ज्ञान का इस्तेमाल अपनी बीमारी के इलाज के लिए करते थे। धन अभाव के कारण ये चिकित्सा सुविधा लेने से हिचकते थे जो इन्हें मृत्यु के मुँह में ढकेल देती थी। दयनीय दशा से ग्रसित ये समाज इलाज के लिए केवल जड़ी-बूटी, तन्त्रमंत्र, जादू, झाँड-फूंक आदि पर ही आधारित था। लेकिन अभी इनको आधुनिक चिकित्सा सुविधा सरकार की तरफ से उपलब्ध है। डॉक्टर नियमित रूप से प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर मौजूद रहता है। प्रसव के लिए महिलाओं को अस्पताल ले जाते हैं जहाँ नर्स व महिला डाक्टर, कम्पाउण्डर आदि की सेवा उपलब्ध हो जाती है। सरकारी योजनाओं के तहत बीसी0 जी0, डी0 पी0 टी0, हेपेटाइटिस आदि के टीके बच्चों को

नियमित रूप से लगाये जाते हैं। कार्ड भी बनाया जाता है। वनज व स्वास्थ्य की जांच भी की जाती हैं। पोलियों की दवा “राष्ट्रीय पोलियो उन्मूलन अभियान” के तहत पिलायी जाती है। यहाँ अभी तक कोई व्यक्ति पोलियो रोग से पीड़ित नहीं है। आपातकालीन रात्रि सेवा मिलती है लेकिन घर पर नहीं अस्पताल जाना पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति को गम्भीर बीमारी है तो प्राथमिक इलाज के बाद शहर के किसी अस्पताल को रेफर कर दिया जाता है। कभी-कभी आर्थिक स्थिति ठीक न होने की दशा में ये झाँड-फूंक, तन्त्रमन्त्र, बलि आदि आनुष्ठानिक क्रिया का सहारा लेते हैं। कभी-कभी लाभ हो भी जाता है लेकिन अधिकांश रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। महिलाओं के लिए अस्पताल को यहां ज्यादा उपयुक्त माना जा रहा है। शिक्षा का प्रसार होने पर इन सब में जागरूकता आयी है, अब ये घर पर प्रसव नहीं करवाते हैं। अस्पताल जाना ज्यादा लाभप्रद माना जा रहा है। हड़ड़ी टूटने पर पहले केवल स्थानीय ज्ञान व इलाज की पद्धति अपनायी जाती थी लेकिन अब अस्पताल जाकर प्लास्टर, आपरेशन आदि करवाते हैं, चाहे यह अन्तिम विकल्प के रूप में ही क्यों न हो। जब भी बीमार होते हैं तो एक स्वास्थ्य विकल्प के रूप में दवाइयों का लाभ लेते हैं।

जड़ी-बूटियां किसी भी मर्ज में लाभ पहुंचाती हैं लेकिन इसको उपयोग लायक बनाने में जो श्रम लगता है और सही पहचान न हो पाने के कारण ये इसको द्वितीय विकल्प के तौर पर देखने लगे हैं। भोटिया जनजाति की पचास वर्ष से ऊपर की उम्र के लोग ज्यादा अस्पताल नहीं जाते हैं। शिक्षित व युवा उम्र के लोगों में अधिकांश अस्पताल ही जाते हैं। पूछने पर बताते हैं कि डॉक्टर जांच कर पता लगा सकते हैं कि बीमारी की वजह क्या है उसी के अनुरूप दवा देते हैं और जल्दी लाभ मिलता है, मेडिकल स्टोर भी अस्पताल के आस-पास खुल गये हैं। कुछ मरीज यही दुकान से सीधे दवा खरीद लेते हैं। यहां स्थानीय स्तर पर झोला छाप डॉक्टर नहीं हैं। लगभग सभी ने कभी न कभी अंग्रेजी दवाओं का इस्तेमाल किया है। एक व्यक्ति

●●● वीथिका ●●●

नानासेम सरमौली गाँव के हैं, नाम भाल सिद्ध है, बताते हैं कि इन्होंने कभी अंग्रेजी दवा का इस्तेमाल नहीं किया है न ही बाजार की कोई खाद्य वस्तु का प्रयोग किया है। अभी तक गैरसरकारी संगठन यहां तक कभी नहीं आया। स्वास्थ्य जागरूकता के लिए पोलियो दवा पिलाने वाले लोग आते हैं। अभी पानी सम्बन्धी बीमारी यहां नहीं है। लोग बताते हैं कि सीधे बर्फ गलकर पानी आता है। पहाड़ों में पतले पतले दर्रे बने हुए हैं। इन्हीं के माध्यम से निरन्तर पानी गिरता रहता है। सरकारी योजना के तहत पाइप लाइन बिछाई गयी है और इन्हीं झरनों से जोड़ी गयी है जो लोगों तक पानी पहुँचाती है। पतली-पतली सीमेन्ट की नहरें बनाई गयी हैं जो इनके खेतों तक पानी पहुँचाती हैं। पानी का इस्तेमाल ये सीधे झरनों से कपड़ा धोने के लिए, नहाने के लिए करते हैं। भोटिया लोग जो इन तीनों गाँवों नानासेम सरमौली, दरकोट, हरकोट में रहते हैं प्रत्येक दिन स्नान नहीं करते क्योंकि यहां ठण्ड बहुत रहती है। मौसम साफ व धूल रहित होता है। धार्मिक कारणों से कुछ लोग रोज स्नान करते हैं। किसी विशेष सामाजिक पर्व पर सभी स्नान करते हैं। साबुन व डिटरजेन्ट का प्रयोग करने लगे हैं लेकिन इनकी संख्या ज्यादा नहीं है। नहाने व बाल साफ करने के लिए स्थानीय जड़ी-बूटी का इस्तेमाल करते हैं।

अस्तु आधुनिक सोच व शिक्षा की पहुँच ने लोगों को जागरूक किया है तथा लोगों को पारस्परिकता व रूढ़िवादिता से धीरे-धीरे मुक्ति मिल रही है। भोटिया लोगों की बस्तियों को सुगम बनाकर आधुनिक समाज व विचारधारा से जोड़कर इन्हें जागरूक किया गया है। मिश्रित चिकित्सा पद्धति ही सही पर आधुनिक चिकित्सा पद्धति के बारे में भोटिया जनजाति जागरूक हो गयी है।

सन्दर्भ :

1. शोधों पर आधारित लेख
2. भोटिया जनजातियों से साक्षात्कार के आधार पर लेख।

3. विष्ट, बी0 एस0, राजी ए हिमालयन ट्राइव ऑफ इन्डो रेपाल बोर्डर (प्राब्लम एण्ड प्रोसपेक्टस ऑफ ट्राइबल डेवलपमैण्ट), स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा, 1991 ।
4. रायपा, रतन सिंह, शौका, सीमावर्ती जनजाति, रायपा, ब्रादर्स-धारचूला पिथौरागढ़, 1974 ।
5. जग्गी, ओ0 पी0, फोक मेडिसिन, आत्मा राम एण्ड सन्स, दिल्ली-1973

उमैय्याकालीन सभ्यता एवं संस्कृति :

एक दृष्टि

डॉ० रजिया परवीन*

शोध सार –

प्रस्तुत प्रपत्र ऐतिहासिक अध्ययनों पर आधारित है। इस प्रपत्र में उमैय्याकालीन सभ्यता एवं संस्कृति के विकास पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है। उमैय्याकाल इस्लामी साम्राज्य के प्रभुत्व तथा सभ्यता संस्कृति के विकास का काल था। उमैय्यावंश के खलीफाओं ने न केवल इस्लामी साम्राज्य का अद्वितीय विस्तार किया बल्कि प्रशासन एवं संगठन सम्बन्धी आवश्यक सुधार भी लाये। साथ ही इस काल में समाज में शिक्षा, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान तथा कला कौशल के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक प्रगति हुई।

Key-Words – उमैय्याकालीन प्रशासन, सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा, साहित्य एवं कौशल।

उमैय्याकालीन प्रशासन –

अमीर मुआविया द्वारा 661 ईसवी में उमैय्यावंश की स्थापना की गयी। 750 ई० तक इस वंश के शासकों ने इस्लामी साम्राज्य के ऊपर शासन किया। उमैय्याकाल इस्लामी साम्राज्य के प्रभुत्व एवं सभ्यता संस्कृति के विकास का काल था। अमीर मुआविया एक सफल नेता ही नहीं वरन एक योग्य शासक एवं संगठनकर्ता भी थे। इस्लामी शासन व्यवस्था में उन्होंने महत्वपूर्ण परिवर्तन किये तथा साम्राज्य को संगठित कर उसे अत्यंत शक्तिशाली बना दिया। विभिन्न प्रान्तों से आये हुए शिष्ट मण्डलों के प्रतिनिधियों के साथ वह शिष्टता से मिला करता था और उनकी समस्याओं

* असि० प्रोफेसर (अरब कल्चर), नारी शिक्षा निकेतन पी०जी० कालेज, लखनऊ।

का समाधान किया करता था। मुआविया ने खलीफा का पद प्रतिष्ठित किया और उसके अधिकारों में अपार वृद्धि की। प्रशासनिक सुविधा और सुव्यवस्था के उद्देश्य से मुआविया ने सम्पूर्ण साम्राज्य को 5 प्रान्तों में विभाजित किया और प्रान्तों की देखभाल के लिए अमीरों की नियुक्ति की। भूमिकर राजस्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत था मुआविया ने कृषि सम्बन्धी साधनों को समुन्नत बनाने का सफल प्रयास किया। मुसलमानों को जो भत्ते दिये जाते थे उसमें मुआविया ने ढाई प्रतिशत कटौती कर दी। कृषि सम्बन्धी साधनों को समुन्नत बनाने का भी सफल प्रयास किया। इस्लामी अनुश्रुतियों के द्वारा न्याय प्रशासन के क्षेत्र में ताजियों की नियुक्ति का श्रेय हज़रत उमर को दिया जाता है। जिसने 643 ईसवी में मिश्र में पहले काजी की नियुक्ति की। मरवान द्वितीय (744-750 ई0) के शासनकाल में मुआविया द्वारा सैन्य व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया गया। सेना के परम्परागत श्रेणियों का अंत करके कुर्दुस नामक एक नये सैनिक दस्ते की व्यवस्था की।

सामाजिक व्यवस्था –

सम्पूर्ण इस्लामी साम्राज्य को चार वर्गों में विभाजित किया गया था – शासक वर्ग, मवाली, जिम्मी, दास।

शासक वर्ग में खलीफा, उनके परिवार के लोग, प्रान्तपति, सेनानायक, अधिकारी वर्ग के लोग तथा अरब विजेता शामिल थे। अरबों का दूसरा वर्ग मवाली था इसमें वे नये मुसलमान वर्ग के लोग आते थे जिन्हें शक्ति के साथ इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया था। इन्हें खिराज (Land Tax) देना पड़ता था। समाज में तीसरा वर्ग जिम्मियों का था। इस वर्ग में गैर इस्लाम धर्म के अनुयायी जैसे – ईसाई, यहूदी, साबी आदि आते थे। समाज में यह सभी सुविधाओं का उपयोग करते थे। चौथा वर्ग गुलामों का था जो सबसे निम्न वर्ग था। गुलाम विभिन्न विजित देशों के होते थे। समाज में गुलामों की संख्या काफी अधिक थी। गुलाम स्त्री और पुरुष दोनों होते थे किन्तु उनकी स्थिति अपेक्षाकृत संतोषजनक थी।

●●● वीथिका ●●●

मनोरंजन के अनेक साधन लोग भिन्न भिन्न प्रकार के खेलकूद घुड़दौड़, मुर्गे की लड़ाई, शिकार आदि से अपना मनोरंजन करते थे। खलीफा वलीद पहला उमैय्या शासक था जिसने सार्वजनिक दौड़ को संरक्षण प्रदान किया। खलीफा सुलेमान ने घुड़दौड़ की राष्ट्रीय प्रतियोगिता का प्रबन्ध किया।

शिक्षा – यद्यपि सामान्य शिक्षा का प्रचलन नहीं था फिर भी सामान्य वर्ग के लोग मस्जिदों में अपनी संतानों को शिक्षा दिलाते थे। वस्तुतः शिक्षा पर धर्म का काफी प्रभाव था। छात्रों को अरबी भाषा तथा व्याकरण के अतिरिक्त कुरान, हदीस का ज्ञान उपलब्ध कराया जाता था। राजदरबार में शहजादों की शिक्षा के लिए शिक्षक नियुक्त होते थे। खलीफा उमर द्वितीय की शिक्षा में विशेष रुचि थी। उसने शिक्षकों को यह आदेश दिया कि वह शहजादों को मनोरंजन से घृणा करने की शिक्षा दें।

साहित्य – उमैय्याकाल में अरबी साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। अरबी साहित्य के विकास में अरब के विद्वानों के अतिरिक्त खलीफा तथा शासक वर्ग के लोगों ने यथेष्ट योगदान दिया। खलीफा ने कवियों और विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया तथा पारितोषिक, अनुदान, वजीफा आदि देकर उनके उत्साह को काफी बढ़ाया। इस काल में अरबी साहित्य के विभिन्न पक्षों का विकास हुआ यथा – काव्य साहित्य, गद्य साहित्य, व्याकरण, इतिहास, संभाषण, पत्राचार आदि।

विज्ञान – उमैय्याकाल वैज्ञानिक प्रगति का युग माना जाता है। इस काल में चिकित्सा शास्त्र, रसायन शास्त्र, ज्योतिषशास्त्र आदि का व्यापक विकास हुआ। अरब वासियों को प्राचीनकाल से ही चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान रहा है। मन्त्र-तन्त्र तथा जादू टोना के साथ रोगियों को औषधियां दी जाती थीं। कुछ ऐसे नुस्खे भी मिले हैं जिनमें शहद को प्रधान औषधि के रूप में लिखा गया है। इन्हें लोग पैगम्बर का नुस्खा मानते हैं किन्तु मध्यकालीन इतिहासकारों ने जैसे इन्हे खलदून ने भी इसे मानने से इंकार कर दिया है।

हल हरीश इब्ने खालदा अरब का पहला चिकित्सक था। प्रमुख चिकित्सकों में इब्ने-उसाल तायाजूक, मासरजौया हैं। खलीफा वलीद ने कुष्ठ रोग के इलाज के लिए प्रबन्ध कर प्रशंसनीय कार्य किया था। उमर द्वितीय ने चिकित्साशास्त्र के अध्ययन केन्द्र को स्कन्दरिया से हटाकर उसे एन्टिओक तथा हरान में स्थापित किया। जाबिर इब्ने हयान, जाफर अल सादिक का नाम प्रमुख रसायन वैज्ञानिकों में लिया जाता है।

कला कौशल – उमैय्याकाल इस्लामी सभ्यता एवं संस्कृति के उद्भव एवं विकास का काल माना जाता है। शिक्षा, साहित्य, धर्म, ज्ञान, विज्ञान आदि के क्षेत्रों में इस काल में अरबों ने काफी प्रगति की साथ ही कला कौशल के विभिन्न अंगों का अभूतपूर्व विकास हुआ। अरबों की एक विशेषता यह भी रही है कि उन्होंने अपने अधीनस्थ देशों के लोगों से निसंकोच ग्रहण किया जो उन्हें उचित लगी इतना ही नहीं ग्राह्य तत्वों को उन्होंने आत्मसात भी किया। इस प्रकार श्रेष्ठ तत्वों को अपनी सभ्यता में समुचित स्थान देकर अरबों ने एक सम्मिश्रण किन्तु सम्पन्न सभ्यता को जन्म दिया जो इस्लामी सभ्यता के नात से प्रसिद्ध हुई।

उमैय्याकाल स्थापत्यकला, चित्रकला एवं संगीतकला के विकास का काल था। स्थापत्यकला के विकास का सम्बन्ध धर्म के साथ काफी गहरा था। इस्लामी स्थापत्य कला भी पहले धार्मिक भवनों में निःसारित होती है। इस दृष्टि से इस्लाम में मस्जिदों का निर्माण बड़े महत्व का है। पैगम्बर द्वारा मदीना में इस्लाम की पहली मस्जिद का निर्माण हुआ। जैसे जैसे अरब अन्य देशों के सम्पर्क में आये उनकी कला निखरती गयी। उमैय्याकाल में शामी, मिस्री, ईराकी, ईरानी, उन्दुलसी, उत्तरी अफ्रीका आदि अनेक रूपों में इस्लामी स्थापत्यकला प्रस्फुटित हुई। इस कला का सर्वोच्च प्रदर्शन मस्जिद की मेहराब मीनारों और दीवारों पर किया गया।

चित्रकला – मुहम्मद साहब तथा कुरान ने चित्रकला को अधार्मिक करार दिया है। उमैय्याकाल में चित्रकला सम्बन्धी रुढ़िवादी विचारधारा का

●●● वीथिका ●●●

त्यागकर आंशिक रूप से मनुष्यों और जानवरों के चित्र बनाये गये। निःसंदेह यह एक क्रान्तिकारी कदम था। इस काल में पच्चीकारी, अलंकरण, फूलदान से निकली हुई पत्तियों, चमकीले पत्तों, पक्षियों, अंगूर की लताए तथा खजूर के वृक्ष आदि के चित्र बड़ी संख्या में बनाये गये। फिर भी धार्मिक प्रतिबंधों के कारण चित्रकला और मूर्ति निर्माण कला की वांछित प्रगति नहीं हो पायी।

संगीत – अरब में संगीत का इतिहास काफी पुराना है। इस्लाम के अभ्युदय से पूर्व अरब में कारवानी, जंगी, मजहबी तथा इश्किया गीतों का प्रचलन था परन्तु इनमें कारवानी तथा हुदी सबसे लोकप्रिय था। अरब में संगीत तथा रागों का उद्भव हुदी से ही माना जाता है। सभी उमैय्याशासक कविता और संगीत के महान प्रेमी थे। विभिन्न प्रकार के वाद्ययन्त्रों – मुज़हर, बांसुरी, बूक, मगरिफा, झांझ, शहनाई, डफ आदि का प्रयोग होता था। प्रमुख संगीतकारों में अल-गिरीद, इब्ने मुहरिज, माबाद, जमीला, हबान, सलाम आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उमैय्याकाल में संगीत के विकास में उमैय्या खलीफाओं के योगदान को आंखे से ओझल नहीं किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से उमैय्या शासनकाल उल्लेखनीय माना जाता है।

संदर्भ –

1. मध्यकालीन इस्लाम – डा० विपिन बिहारी सिन्हा, पेज नं० 95
2. History of Islami People, Cari Brockelmann.
3. Kitab al - Wulah, Al Kindi ed by R. Guest, PP 300 - 301
4. Tabri, Vol-II, P. 1944, IBN Khaladun, Vol-III, P. 165
5. Masudi OP-Cit Vol. xiii, Page 165
6. IBN AL Gawari, Sirat Umar P. 56
7. Quoted in Hitti Op. Cit P.253, Let the first Moral Lesson Impressed upon them be hatred by means of amuesment.

8. IBN Khaldun, Mukaddarmah P. 412
9. IBID, P.121, Hitti OP- Cit, P. 220
10. IBN -ABI - USABIYAH Vol.1, Page - 116
11. P.K. Hitti, Op. Cit, P. 227.

गुरु : अर्थ, अवधारणा एवं स्वरूप

धीरेन्द्र कुमार पाण्डेय*

भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार में चिन्तन एवं साधना के क्षेत्र में गुरु का स्थान अविवादग्रस्त एवं सर्वमान्य रहा है। मानव इतिहास की श्रेष्ठतम् विभूतियों ने 'गुरु' रूपी गौरवमयी पदवी को अपनाया है। तथा समस्त युगों के अनेक धार्मिक नेताओं और समाज सुधारकों ने इस गौरवमयी पर "गुरु" को अंगीकार करके, इसके गौरव में अभिवृद्धि की है, जैसे—कृष्ण, बुद्ध, गाँधी, सुकरात, मुहम्मद साहब, कनफ्यूशियस, चाणक्य, कबीर, तुलसी आदि सभी सच्चे अर्थों में मानव जाति के गुरु ही थे जिन्होंने समाज को एक नयी दिशा दर्शाते हुए उनका उचित मार्गदर्शन किया।

'गुरु' आज से ही नहीं अपितु अनादिकाल अर्थात् वैदिक काल से ही समाज में सम्मानित होता रहा है। धर्म और समाज की नियामिका शक्ति भी उन्हीं 'गुरु' के हाथ में रही है, यह केवल आध्यात्मिक, सामाजिक अथवा वैयक्तिक क्षेत्र में प्रभावकारी सिद्ध नहीं हुआ, वरन् उससे प्रेरणा प्राप्त करके उनके शिष्यों ने राजनैतिक क्रांतियों अर्थात् सत्ता परिवर्तन तक किया है।

एसे त्यागमयी, सम्मानीय, गौरवमयी, 'गुरु' पद के बारे में और अधिक कहने से पहले उसके अर्थ के बारे में जान लेना आवश्यक है, क्योंकि 'गुरु' शब्द कानों में पड़ते ही एक आदर्श, त्यागमयी, प्रतिमा उभर कर सामने आ जाती है। उस त्यागमयी प्रतिमा अर्थात् 'गुरु' के अर्थ को परिभाषित करते हुए विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ग्रंथों में 'गुरु' के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं जिन्हें प्रसंगवश यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

'गुरु' का अर्थ —

वाचस्पत्यम् में 'गुरु' शब्द की मीमांसा करते हुए तर्क वाचस्पति श्री तारानाथ भट्टाचार्य लिखते हैं। "गिरत्यज्ञानं गृणात्युपदिशति धर्म" अर्थात् शिष्य के अज्ञान का निराकरण करके धर्म का उपदेश देने वाले को 'गुरु'

* शोध छात्र (हिन्दी विभाग), लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

कहते हैं ।

अन्य कोशकार 'गुरु' का अर्थ इस प्रकार बताते हैं—

“गुकारस्तमसि प्रोक्तो रुकारस्तन्निवर्तकः ।”

इसके अनुसार 'गु' का अर्थ है 'अन्धकार' और 'रु' का अर्थ है— 'हटाने वाला' । अर्थात् 'गुरु' वह है जो अंधकार को हटा दे । एक सूक्ति भी है 'अंधकारं गिरति इति गुरुः ।'

व्याकरण शास्त्र से गुरु को देखें — “गुणातीति गुरुः” ।

'गृ निगरणे' धातु से अर्थ लेते हैं—जो अंदर से कुछ निकाल कर दे, वह गुरु कहलाता है । निरुक्तकार श्री यास्काचार्य जी भी 'गुरु' का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि सहज भाव से आवांठित संस्कारों को खोद—खोद कर निकालने और उनकी जगह अमृत अर्थात् ज्ञान भर देने वाले को गुरु कहते हैं ।

श्री विशाल मंगलवाड़ी जी ने अपने ग्रंथ (THE WORLD OF GURUS) में 'गुरु' का अर्थ बताते हुए लिखा है— 'गुरु' शब्द गुर (ऊ) से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ होता है, ऊपर उठाना, प्रहार करना, मार डालना, प्रयास करना, खा जाना आदि ।

अतः गुरु वह है जो नानाविध साधनात्मक यंत्रणाएं देकर शिष्य के अज्ञान का हनन अथवा निगरण कर लेता है और उसके चरित्र को परिशुद्ध एवं समुन्नत बना कर उसे मुक्ति के मार्ग पर आरूढ़ कर देता है ।

अतः 'गुरु' वह है जो दिव्य ज्ञान और शक्ति के कारण भारी हो, श्रेष्ठ हो, महान हो, माया के पाश में बँधा सामान्य मनुष्य लघु होता है, पराज्ञान—सम्पन्न विशिष्ट पुरुष गुरु हो उठता है । गुरु में लघु के मार्ग—दर्शन की क्षमता होती है ।

उपर्युक्त विद्वानों के 'गुरु' विषयक विचारों एवं 'गुरु' शब्द के बताए गए अर्थों का अवलोकन करते हुए निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि

●●● वीथिका ●●●

‘गुरु’ शब्द निम्नांकित अर्थों एवं व्यापारों का सूचक या द्योतक प्रतीत होता है—

1. शिष्य के अज्ञान का निगरण ।
2. शिष्य के अवांछित संस्कारों का उन्मूलन ।
3. बिना दुःख दिए—शिष्य कल्याण ।
4. साधनात्मक यन्त्रणाओं के द्वारा शिष्य के अज्ञान का हनन तथा चरित्र का परिष्कार ।
5. धर्मोपदेश का दान ।
6. ज्ञान—विज्ञान का दान ।
7. अंधकार का उन्मूलन कर प्रकाश का दान ।
8. ईश्वरीय गुणों का स्थूल मानवीय स्वरूप ।

‘गुरु’ की अवधारणा —

हमारे पौराणिक ग्रंथों ने सृष्टि का क्रम ब्रह्म, विष्णु, महेश आदि देवों से अंकित किया है तथा ब्रह्म अथवा शंकर को आदि गुरु तथा दर्शन से लेकर नृत्य तक सभी विद्याओं का आदि प्रवर्तक भी कहा है। वेद तो साक्षात् ब्रह्म के ही वाक्य हैं, और व्याकरण शास्त्र भगवान शंकर के डमरू निःसृत नाद से उद्भूत है, नृत्य एवं गायन भी नटराज भगवान शंकर से आरम्भ होकर अबाध गति से चला आ रहा है। इसी क्रम में जीवन के प्रत्येक कार्य के लिए ‘गुरु’ की आवश्यकता का अनुभव हुआ। यही कारण है कि जीवन में माता—पिता, गुरु, दीक्षा गुरु, शास्त्र गुरु, शस्त्र गुरु, सद्गुरु, जगतगुरु, सभी का अपना स्थान तथा अपनी मर्यादाएं हैं। सबके मूल में समाज में प्रचलित गुरु की भावना ही प्रमुख रखती है। किसी समय में तो गुरु के हाथ में समाज की नियामिका शक्ति होती थी।

‘गुरु’ की पहचान —

‘गुरु’ शब्द मस्तिष्क में आते ही अन्दर से एक प्रश्न उठता है, कि किस व्यक्ति, सन्त या आचार्य को ‘गुरु’ कहा जाए और किस तरह से पहचाना जाये, कि यह गुरु है या नहीं ? अर्थात् किन गुणों से युक्त व्यक्ति

को गुरु की संज्ञा से अभिहित किया जाए।

इसी सन्दर्भ में पॉल ब्रंटन, के०जी० शर्मा तथा अनय बहुतेरे अन्वेषियों ने ऐसे गुरु की दुर्लभता और साथ ही उनकी पहचान की कठिनाई का उल्लेख किया है। पर गुरु रूप में अपनी आत्मा का वरण क्या कम दुष्कर है? अहम् की झूठी-सच्ची प्रेरणाओं से अलग करके अपने आन्तरिक गुरु की सही आवाज को पहचान ले सकना क्या कम कठिन है? यह ठीक है, कि सिंहों के लहड़े नहीं होते, हंसों की पाँत नहीं होती, लालों की बोरियां नहीं मिलती और सच्चे साधु जमात बाँध कर नहीं चलते। हर कीमती चीज़ दुर्लभ होती है, पर दुर्लभ को सुलभ बना देना जिस सत्ता के हाथ में है, उसे इस बात की खबर है कि सच्ची लगन कहां और किसमें है। जहां आग जलती है, वहां ऑक्सीजन दौड़ पड़ती है। जहां सच्ची तड़प पैदा होती है, वहां सच्चे गुरु को आना पड़ता है।

विवेकानन्द का जन्म और रामकृष्ण का अवतरण एक घटना के दो आयाम हैं। नकली गुरुओं से असली गुरु को छांटकर अलग नहीं करना पड़ता है, वह खुद छंट कर अलग हो जाता है। सच्ची आवश्यकता की चुम्बकीय शक्ति काठ और पत्थर जैसे तथा कथित गुरुओं की भीड़ में से लोहे जैसे समर्थ गुरु को सहज भाव से अपने पास खींच लेती है।

यह जिज्ञासा उठना तो स्वाभाविक है, कि ऐसे शक्ति सम्पन्न 'गुरु' कैसे पहचाना जाये -

इस पर प्रकाश डालते हुए ब्रह्मलीन डॉ० श्री चतुर्भुज सहाय जी लिखते हैं- 'जब तुम साधु या संत व महात्मा के उसकी जांच करने की नीयत से पहुंचों तो पहले उसको प्रणाम करो। फिर चुपचाप अदब से एक ओर जा बैठो। बातें भी अधिक न करो। यदि वह तुम से कुछ पूछे तो उसका उत्तर नम्रता से दो और चुप रहो। उस समय तुम अपने नियम का कर्म भी न करो, जैसे जाप, प्राणायाम या ध्यान इत्यादि। तात्पर्य यह है कि उस वक्त थोड़ी देर के लिए तुम शारीरिक और मानसिक कर्मों से बिल्कुल शून्य हो जाओ। फिर

●●● वीथिका ●●●

अपने मन की ओर देखो कि इस समय यह क्या कर रहा है। यदि उस समय मन शान्त और आनन्दमय हो, घरबार और काम धन्धे की फिक्र से उस समय मन को वैराग्य हो गया हो तो समझ लो कि यह सत्य पुरुष द्वन्द्व के पार पहुंच चुका है, गुरु बनाने के लायक है और यदि ऐसा न हो, हम जैसे के तैसे ही रहें तो उसका त्यागना ही उचित हैं, वह अभी अपूर्ण है और न गुरु कहलाने का हकदार है।

नरेन्द्र कोहली जी ने अपनी रामकथा 'अभ्युदय-1' में एक स्थान पर गुरु विश्वामित्र जी से अपने शिष्य राम लक्ष्मण के सम्मुख जो कहलवाया है वह प्रसंगवश यहां उल्लेखनीय है—

'ऋषि का चोला ओढ़कर ही कोई ऋषि नहीं हो जाता, जैसे केवल लेखनी चलाकर कोई कवि नहीं हो जाता या शिष्यों को लिखा पढ़ा कर कोई गुरु नहीं हो जाता। केवल वाहयाचार ब्रह्मचार ही पर्याप्त नहीं। कर्म, दायित्व, सत्य निष्ठा और दृढ़ चरित्र की भी आवश्यकता होती है।'

अर्थात् गुरु वही है जो कर्म दायित्व, सत्य निष्ठा और दृढ़ चरित्र से युक्त हो, आदर्श गुरु भी वही हो सकता है।

सन्दर्भ —

1. कल्याण के उपासना अंक में प्रकाशित श्री प्रभुदत्त शास्त्री 'गुरुपासना' शीर्षक निबन्ध पृष्ठ 628
2. Guru Purnima Special Issue of Yoga – July 1977, Page No. 9
3. Shri Vishal Mangalwadi: The World of Guru, Page No. 8.
4. आचार्य शिवचन्द्र प्रताप, 'भारतीय चिन्तन में गुरु-धारणा और भक्ति काव्य' पृष्ठ 19।
5. नरेन्द्र कोहली-अभ्युदय भाग-1, पृष्ठ-156

वीथिका

—: नियम एवं शर्तें :—

- ✍ वीथिका साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान की वार्षिक सांदर्भिक शोध पत्रिका है। शोधपरक रचनाओं हेतु शोधार्थियों एवं अध्येताओं का सहयोग अपेक्षित है।
- ✍ शोध प्रपत्र/आलेख के साथ रचना के मौलिक व अप्रकाशित होने का स्वहस्ताक्षरित घोषणापत्र अनिवार्य रूप से प्रेषित करें।
- ✍ शोध प्रपत्र/आलेख की शब्द सीमा 3000 शब्दों तक सीमित हो तथा शोध प्रपत्र के साथ 200 शब्दों का शोधसार भी अवश्य प्रेषित करें।
- ✍ शोध प्रपत्र एवं आलेख के साथ संदर्भ ग्रन्थ सूची, संदर्भ ग्रन्थ का प्रकाशन वर्ष, संस्करण तथा प्रकाशक का उल्लेख अवश्य करें।
- ✍ शोध पत्र एम0एस0 वर्ल्ड पर हिन्दी में Kruti Deve 010 के Font Size 14 में तथा अंग्रेजी में Times New Roman के Font Size 12 में टंकित करवाकर भेंजे।
- ✍ शोध प्रपत्र एवं आलेख ई.मेल पते पर अथवा सी.डी. में अनिवार्य रूप से एक मुद्रित प्रति के साथ प्रेषित करें।
- ✍ प्रकाशन हेतु शोध पत्र की स्वीकृति/अस्वीकृति का निर्धारण सम्बन्धित विषय के विशेषज्ञों की राय से सम्पादक मण्डल द्वारा किया जाएगा।
- ✍ समस्त प्रकाशित शोध प्रपत्रों/आलेखों का सर्वाधिकार संपादक को सुरक्षित होगा।
- ✍ अस्वीकृत शोध प्रपत्रों/आलेखों की वापसी की जिम्मेदारी सम्पादक की नहीं होगी।
- ✍ समस्त न्यायिक परिवाद माननीय उच्च न्यायालय, लखनऊ के अधीन होंगे।

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत / संस्थागत



प्रति अंक	—	300 / 500
पांच वर्ष	—	1,200 / 2,000
आजीवन	—	3,000 / 5,000

सदस्यता पत्रक

सम्पादक,

‘वीथिका’

प्रिय महोदय,

मैं राष्ट्रीय वार्षिक अनुसंधान पत्रिका वीथिका का व्यक्तिगत / संस्थागत (), वार्षिक सदस्य (), / त्रिवर्षीय सदस्य (), / आजीवन सदस्य () बनना चाहता / चाहती हूँ। अतः मैं अपना सदस्यता शुल्क रूपये (अंकों में) / (शब्दों में) नकद / चेक / मनी ऑर्डर / बैंक ड्राफ्ट संख्या द्वारा दिनांक को भेज रहा / रही हूँ।

नाम

पद नाम

पत्रिका भेजने का पता

दूरभाष / मो०

नाम व हस्ताक्षर

नोट –

- कृपया समस्त भुगतान ‘सम्पादक वीथिका, लखनऊ’ के नाम करें। लखनऊ के बाहर के चेक में Rs. 100 अतिरिक्त जोड़ें।
- सदस्यता पत्रक की छाया प्रति भी स्वीकार्य है।